रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग २)

परमसंत डा. श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

प्रकाशक :

आचार्य, रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : १.५०

मुद्रक :

नवीन प्रेस

दिल्ली -६

निवेदन

परमसंत डाक्टर श्री कृष्णलाल जी , आचार्य, रामाश्रम सत्संग, सिकंदराबाद (उ०प्र०) के प्रवचनों का यह दूसरा परमार्थ प्रेमियों कि सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष होता है। इसमें ३० अप्रैल सन १९५८ से सन १९६३ तक के जो भी प्रवचन संकलित हो सके वे छापे गये हैं। इससे पहले के प्रवचन 'संत वचन' (भाग १) में छप चुके हैं। आशा है प्रेमीजन इन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे और इसमें दिए हुए उपदेशों को व्यवहारिक रूप देने का प्रयत्न करेंगे। सन १९६३ से आगे के प्रवचन 'संत वचन' (भाग-३) में छापे जायेंगे।

दिल्ली *दास,*

दि० १५-१०-६९ *करतार सिंह*

विषय-सूचि

विषय

निवेदन

१. परमार्थ का अर्थ : संत की पहिचान

२. जिव की सच्ची चाह

३. हमारे पतन का कारण

४. परमात्मा से प्रेम करो, अभ्यास करो

५. प्रेम का स्वरूप

६. कथनी, करनी, रहनी

७. परमार्थ तथा लौकिक व्यवहार

८. संत-मत का आधार गुरु प्रेम तथा गुरु सेवा हैं

९. दुनियां से उपराम होना

१०. बिना अहंकार का त्याग किये मोक्ष नहीं

११. मनुष्य जीवन का आदर्श

१२. तीन प्रकार के रोगी

१३. भेंट

१४. संत-मत में उपासना का तरीका क्या हैं ?

परमसन्त श्री कृष्ण लाल जी
(सिकन्द्रावाद, यू. पी.)

परमार्थ का अर्थ : संत की पहिचान

प्रवचन गुरुदेव, गोरखपुर

(दि० ३०-४-१९५८)

अपनी कामनाओं का पूरा हो जाना हीं परमार्थ का शाब्दिक अर्थ है पर संतों का परमार्थ कुछ और है। स्वार्थ और परमार्थ दो वस्तुएं हैं। परमात्मा का प्रेम चाहने वाले बहुत कम हैं, हजारों में से कोई एक। प्रेम तो प्रेम के लिए होना चाहिए, और प्रेम का असली भण्डार परमात्मा है। उसे चाहने वाला कोई विरला ही होता है, वही परमार्थी के श्रेणी में आता है। शेष सभी स्वार्थ वश प्रेम करते हैं।

फायदा या नुकसान (लाभ या हानि) दोनों साथ साथ हैं। आज कल के जैसे जिज्ञासु हैं वैसे ही संत भी हैं। जिस इच्छा शक्ति (Will Power) से परमात्मा की नजदीकी (समीप्य) हासिल करनी चाहिए उसे वे अपनी ख्वाहिशों को पूरा करने में लगा देते हैं और इतना नीचे उतर आये हैं जितना जानवर भी नहीं उतरते। आज कल जहाँ जिज्ञासु बहुत हैं वहाँ उसी तरह के संत भी बहुत हैं। असली जिज्ञासु वह है जो परमात्मा के प्रेम के लिए प्रेम करे और सच्चा संत वह है जो उसे परमात्मा का प्रेम दे सके।

एक बार गुरु नानक साहब एक घसियारे के घर रुके। वहां के नवाब साहब भी आये और कहने लगे कि हम भी आपके शिष्य हैं, हमारे यहाँ भोजन स्वीकार कीजिये। इस घसियारे कि सुखी रोटियां आपको क्यों प्यारी लगती हैं ? इस पर गुरुदेव ने दोनों के घर का भोजन मंगवाया। एक हाथ में उन्होंने नवाब के घर का पूरी हलवा लिया और दुसरे हाथ में उस घसियारे के घर कि रुखी सुखी रोटी और नमक। दोनों को निचोड़ा तो हलवा पूरी में से खून कि बुँदे टपकी और रुखी रोटी

में से दूध। गुरुदेव ने उन धनी मनी सज्जन से कहा – "कौन सा खाऊँ ? जिसमे से खून टपक रहे हैं वह, या जिसमे से दूध निकल रहा है वह ?"

जो जिज्ञासु धन दौलत वाला है परमात्मा से धन ही चाहेगा, परन्तु जो गरीब है दुखी है, वह परमात्मा का प्रेम चाहेगा। इसलिए आज कल देखने में आता है कि इज्जत प्रतिष्ठा मान बडाई के लिए सब फकीरी करते हैं। संतों का कहना है कि जिसने दुनिया को भोगा है, उसकी दुःख मुसीबतों को जानता है, वह यहाँ फंसाने वाली चीजें नहीं चाहेगा। वह उन्हें यहाँ भोग चूका है।

गुरु की जहाँ और पहिचाने हैं वहां यह भी एक पहिचान है कि वह सच्चे जिज्ञासु कि तलाश में रहता है और इस प्रकार अपने गुरु का ऋण उतारना चाहता है। उसको दुनियां कि चाह नहीं होती। जो कुछ न चाहता हो , जीके पास बैठने से ईश्वर प्रेम बढ़े, दुनियां की वासनाएं कम हो, आतंरिक अभ्यास करता हो, जो अपनी गाढ़ी कमाई की चीज (ईश्वर प्रेम) बिना स्वार्थ दे दे, जो सिद्धियों को दिखाकर लोगों को लुभाता न हो और जो एक दिन में ही परमात्मा के दर्शन कराने का ठेका न ले, वही सच्चा संत है।

कर्मयोग के सिद्धांत –'जो करेंगे सो भोगेंगे' – में संत दखल नहीं देता। वह दया वश अपने प्यारे शिष्य के कर्म फल अपने उपर भोग लेता है। ऐसे संत पूरी दुनियां में एक शताब्दी में मुश्किल से दस या बारह होते हैं। जो ताविजें गंडे से दूर हों, दुर्व्यसनों (बुरी आदतों) का शिकार न हों, खुद अभ्यास किया हुआ हो, जिसे दुनियां कि चीजों से उपरति हो गयी हो, ऐसे मनुष्य (जो अंतर का अभ्यास करते हो) ही संत हैं। वे बाहर कि तरफ ले जाने वाले पूजा पाठ से हटकर अंतर का अभ्यास बताते हैं। संत उन लोगों को, जो तं कि अवस्था में हैं, हरकत (motion) न्देते हैं, जिनमे हरकत है उन्हें परमात्मा का प्रेम देते हैं। बुरे लोग उनकी संगति में आकर भले बनते हैं। संत

दुनियां से तारने के ठेकेदार नहीं हैं। वे चाहते हैं कि सच्चे जिज्ञासु को रास्ता बता दें जिससे वे धोखे में न पड़े।

संतमत का तरीका यह है कि बाप कि नकल बेटा है। परमात्मा ने आदमी को अपने ढंग पर बनाया है। जो शक्तियाँ ब्रह्मांड में काम कर रही है वही छोटे रूप में मनुष्य चोले में काम कर रही है। आत्मा दोनों भौंहों के बीच में एक इंच नीचे है। मामूली अवस्था में आत्मा कि धार आगया चक्र पर बैठकर देख भाल करती रहती है। जैसे किसी को जुकाम हो जाए और सांस रूकती हो और ठीक से न आती हो तो उपर से सर कि तरफ से दबाव पड़कर नाक द्वारा छींक आती है और सांस ठीक हो जाती है, यानि शरीर में ज्यादा शक्ति संचारित हो कर उस रूकती हुई सांस को ठीक करती है।

ऐसे ही जब कोई भरी बोझ हाथ से उठाना पड़ता है तो उपर से शक्ति पट्ठों (muscle) में आ जाती है और उस शक्ति से आप बोझ उठा लेते हैं। इसी तरह नारायणी शक्ति ब्रह्मांड में है जो संसार का नियन्त्रण रखती है। जब खराबियां संसार में आ जाती है तब उपर से और बड़ी शक्तियां आती है और जीवों को समझा बुझा कर सन्मार्ग पर लाती है पर जब वे नहीं मानते तो शस्त्र उठा लेती है और काट छांट कर के संतुलन कर देती है। इन्हीं शक्तियों को अवतार या पैगम्बर कहते हैं। काम पूरा हो जाने पर संतुलन कायम रखने के लिए यह अपने पीछे किसी को नियुक्त कर जाते है, वही गुरु कहलाते हैं।

इस तरह अब तीन रूप हो गये –

(१) परमात्मा, (२) अवतार या पैगम्बर (३) गुरु।

यह सवाल हो सकता है कि अगर सब जीवों को सीधा परमात्मा से ही मार्ग दर्शन हो सकता होता और सीधा लाभ हो सकता तो फिर अवतार या पैगम्बर को यहाँ भेजने का क्या मतलब है ? इसका जवाब यह है कि हम परमात्मा से मार्ग दर्शन का लाभ तब उठा सकते है जब वह नीचे आ जाये अर्थात मनुष्य रूप में आ जाए । उसे जीवों का कल्याण करना मंजूर है इसलिए अपने आपको अपने कानून में बाँधता है और स्वयम उनको मानता व् उनका पालन करता है । बच्चे को मा के पेट में हवा, पानी खाना आदि वही तो देता है । क्या वह सीधा उसे नही दे सकता था ? लेकिन नहीं, उसी कानून के कारण उसने उसका पालन पोषण मा के द्वरा किया ।

एक ऊंट है, दोनों तरफ पानी है, बीच में एक पतला रास्ता है, पहले ऊंट कि नकेल मालिक के हाथ में है । शेष सभी ऊँटों कि नकेल आगे वाले ऊंट कि पूंछ में बंधी होती है और एक के पीछे एक सब ऊंट उसी संकरे रस्ते से निकल जाते है । पर जब वह इधर उधर पत्तियों के खाने में लग जाता है तो इधर या उधर गिर जाता है । इसी तरह परमात्मा सबका मालिक है । जो पुरुष उस तक पहुँच चूका है उसका सहारा लेकर दुसरे भी भवसागर पार कर जाते है । ऐसा ही पुरुष गुरु है । यह नियम है । परमात्मा तो सबका मालिक है ही , किन्तु जिव को फायदा देहधारी गुरु से ही होता है । उसी के सहारे अवतार या पैगम्बर तक पहुंचेगा और फिर परमात्मा तक ।

गुरु तीन प्रकार के होते हैं ।

(१) पहला गुरु नर तन धारी है । वह अपनी सूरत को बाहरी जगत से हटाकर शब्द और प्रकाश में लगा देते है । उनका ध्यान करने से जीव बाहरी दुनियां और माया के बंधन को ढीला करता है । वह गुरु शब्द और प्रकाश तक पहुंचा देते है और यह हालत छठे चक्र तक है । जब तक आपको प्रकाश या शब्द नहीं मिला है तब तक आपको नर तन धारी गुरु से ही लाभ होगा और बिना उसके अंतर का गुरु , जो शब्द और प्रकाश है , नहीं मिल सकता । जब तक यह नहीं मिलता तब तक परमात्मा का असली दर्शन नहीं हो सकता ।

(२) दुसरा गुरु अंतर का है जो अपने अंदर है। यह आगया चक्र से सतलोक तक है।

(३) तीसरा गुरु परमात्मा है जो प्रेम ही प्रेम है।

शब्द भी दो तरह के होते है। एक Arteriel (जो कि रगों से पैदा होता है) और दूसरा spiritual (आत्मिक)। एक माद्दी (स्थूल) है, दूसरा आत्मा कि धार के उतरने का है और सूक्ष्म है। स्थूल आवाज़ दिल के दरवाजों (Valves) के खुलने और बंद होने से होती है। Arteriel (माद्दी-स्थूल) आवाज़ का रुझान (बहाव, झुकाव) बाहर की तरफ को है। यह नाड़ी की आवाज़ के साथ-साथ चलती है। इसको नहीं सुनना चाहिए। इसके सुनने से सिर दर्द करने लगता है। यह ध्वन्यात्मक शब्द नहीं है। spiritual vibration (ध्वन्यात्मक शब्द) आत्मा कि धार से सम्बन्धित है। आत्मा उपर से उतर कर पिंड यानि इस मनुष्य शरीर में जिस जिस जगह (Nervous Centre, चक्र) पर ठहरी वहीं एक तरह कि होती आवाज़ पैदा करती गयी है। इसी को आत्मा कि धार कि आवाज़, ध्वन्यात्मक शब्द, अनहद शब्द, आदि नामों से पुकारते हैं। यह अंतर का शब्द है। इससे चित्त एकाग्र (Concentrate) होता है और शक्ति मिलती है। माद्दी (स्थूल) आवाज़ भी इसी के पास ही रहती है।

आत्मा कि धार का शब्द अलग अलग चक्रों पर हो रहा है उसके सुनने से ही असली फायदा होता है। यह शब्द जल्दी नही सुनाई देता है। यदि यह पहले पहल सुनाई न पड़े तो पहले Arteriel sound (स्थूल शब्द) को ही सुनो। ध्यान (Concentration) करते करते मन एकाग्र होने लगता है। और उस हालत में साधकों को सिद्धियाँ आने लगती है। उनके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। इसके साथ ख्याल रखो कि दूसरा शब्द जो ध्वन्यात्मक है उसी के पास हो रहा है और वह सुनाई देने लगेगा।

इस प्रकार तीन फनाइयतें (लय अवस्थाएं) होती हैं।

(१)गुरु में लय (२) अवतारों में लय (३) परमात्मा में लय और फिर उससे भी निकल जाना। सूफियों में इसे क्रमशः कहते हैं। (१) फनाफिल शेख (२) फनाफिल रसूल (३) फनाफिल अल्लाह। पहले गुरु से प्रेम करो और जो कुछ उसके प्रेम में बाधा डाले उसे काटते चलो। सारे दुनियां से प्रेम करते हुए भी बीच में उनके (गुरु के) प्रेम को रखे रहो इससे जिव दुनियां में नहीं फंसने पायेगा। जब गुरु से प्रेम बढ़ जाएगा और लगातार रहने लगेगा तो जो ख्याल उनका होगा वही तुम्हारा होगा। बहुत से लोग नकल करते हैं पर यह ठीक नहीं है। सच तो यह है कि दिल उन्हें चाहने लगे। गुरु का सम्बन्ध आत्मिक है। उसे जात पात से कोई मतलब नहीं। यह पहली फनाइयत (लय अवस्था) है।

दूसरी लय की अवस्था (फनाइयत) शब्द में लय होने की है। सोते, उठते, बैठते वही सुनाई दे, इतना ध्यान उसमे लग जाए। जितने भी उसके कार्य होंगे, उसके अधिकार में होंगे। अवतार जिव और परमात्मा के बीच कि कड़ी होती है और शब्द भी आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाली कड़ी हिल

तीसरी लय की अवस्था परमात्मा में लय होने की है। इसमें प्रेम ही प्रेम है। हर समय उसी के प्रेम में मस्त हो कर आंसू निकल रहे हैं, यह अवस्था हो जाती है। इसकी पहचान यह है कि किसी के प्रति घृणा नहीं रहती। सबसे प्रेम और मैत्री का व्यवहार होता है। सबकी सेवा होने लगती है। जिधर देखता है सब अपने ही दिखाई देते हैं। जो प्रेम अपने पुत्र से है वही साड़ी दुनियां से है। यहाँ वह दो से एक हो जाता है, द्वैत भाव जाता रहता है –'तू ही तो हो जाता है।

अगर गुरु कि शक्ल नहीं आती केवल ख्याल रहता है और ध्यान लगा रहता है शब्द सुनाई नहीं देता और प्रकाश भी नहीं दिखाई पड़ता, पर मन लगा रहता है तो यह ऊँची हालत है।

वे लोग धोखे में हैं जो 'दुनियां झूठी है' 'जगत मिथ्या है' चिल्लाते हैं। मेरा अनुभव यह है कि शक्ति ही प्रकृति भी है और इससे प्रेम करने से मदद मिलती है और नफरत करने पर यह तोड़ फोड़ कर चिथड़े चिथड़े कर देती है। माया का निरादर न करो। वह हम सबकी माँ है। माँ का सहारा लेकर बाप से नजदीकी (समीप्य) प्राप्त करो। माँ कलि से सदा श्री रामकृष्ण परमहंस की मदद की और आखिर में हाथ में कटार देकर आगे बढाने के लिए अपना सिर काट देने के लिए कहा। इसी प्रकार प्रकृति माता से सच्चा प्यार होने पर वह आगे बढाती है। जहाँ वस्तु है वहां असली छाया भी है। जहाँ निराकार है वहां साकार भी है। इसलिए इसके विवाद में मत पड़ो। जहाँ असल है वहां नकल भी है। नकल का सहारा लेकर असल तक पहुँच जाओ। इसी में कल्याण है।

हर बात पर मनन करो। उसे पुराने आचार्यों और संतों की किताबों से मिलाओ। यदि नहीं मिलती तो समझ लो कि अभी तुम्हारे अनुभव में गलती है क्योंकि सदग्रंथ गलत नहीं है। फिर विचार करो और उसे समझो। अपने अंतर में घुसो। जब अंदर सच्चे रूप से घुस जाओगे तब सभी रहस्य खुल जायेंगे।

गुरुदेव सबका कल्याण करे।

जीव कि सच्ची चाह

प्रवचन गुरुदेव, गोरखपुर

(दि० ३०-४-५८ सायं काल)

प्रत्येक जीव तीन छिपे हुए सुखों की चाह में भटक रहा है। –

(१) सम्पूर्ण ज्ञान हो जाए।

(२) हमेशा हमेशा का सुख मिल जाए तथा दुःख से पीछा छुट जाए।

(३) हमेशा की जिन्दगी मिल जाए।

पहले पहल हमे देखना चाहिए कि हमारी इच्छाएं क्या है ? उत्तर मिलेगा इन्हीं उपर के तीन चीजों को मूल रूप में इन्सान चाहता है। जीवात्मा जो अटक गयी है, आत्मा कि तरफ जाना चाहती है। असली सुख आत्मा में है। पर हम अज्ञानवश उसे बाहर ढूंढते है। इसलिए हमे अंतर में प्रवेश करने कि जरूरत है। इसके लिए भेदी अर्थात अंतर की राह तथा अंतर का रहस्य जान्ने वाले कि जरुरत है। जब तक भेदी साथ न होगा। काम अच्छी तरह न बन पायेगा। और यही काम गुरु करता है। जब तक विभिष्ण साथ नहीं था, लंका विजय नहीं हो सकी। इसलिए सच्चे भेदी को साथ लो। उसका ख्याल रखो। उससे प्रेम करो और उसमे विश्वास रखो। रास्ता आसानी से तय हो जायेगा।

हम तीन चीजों से दुनियां में फंसते है। (१) आँख से देख कर (२) कान से सुन कर और (३) जिह्वा से चख कर।

पहले बाहरी दृष्टि को बंद करो तब अंतर के कान खुलेंगे और अंतर का शब्द सुनाई देने लगेगा। अंतर में कहीं मृदंग कि आवाज़ है, कहीं झींगुर बोलने की, कहीं घंटे

की। यहीं अंतर की धुन है। बाहरी चीजों के जायके (स्वाद) तबियत को हटाओ तब ईश्वर का नाम उच्चारण करने में तुमको आनन्द आएगा। इस तरीके से यह होता है कि जो काम मुद्दत यानि बहुत बहुत वर्षों में नहीं होता वह शीघ्र होने लगता है और सच्चा ज्ञान होने लगता है। पहला ज्ञान देहधारी गुरु है, उसका बतलाया हुआ अभ्यास करने से अंदर का प्रकाश दिखाई देने लगेगा और अंदर का शब्द सुनाई देने लगेगा। यही आत्मा का नाम और रूप है और यही दूसरा गुरु है जो तुमको और अंतर के अंतर में ले जाएगा और आत्मा का साक्षात्कार कराएगा। इस दुरे गुरु के सहारे से सतलोक तक पहुँचो। यहीं ज्ञान होता है। शांति मिलती है और सभी इच्छाएं मिट जाती है। यही जीव का आत्मा से मिल्न है जिससे यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा कभी मरती है न पैदा होती है। हमेशा से ठी और हमेशा रहेगी। पूर्ण आनन्द मिल जाता है जिसके बाद किसी आनन्द की ख्वाहिश नहीं रहती और अब इच्छाए मिट जाती है।

ऊँचे अभ्यिसयों को शुरू में न शब्द सुनाई देता है न न प्रकाश दिखाई देता है। ये रस्ते की चीज है। यदि आनन्द आ रहा है, दुनियां से उपरति हो रही है, ध्यान (Concentration) ठीक है तो रास्ता गलत सिद्ध नहीं हुआ। आगे बढ़ रहा है। शब्द और प्रकाश ही हमारा आदर्श और लक्ष्य नहीं है। ये साधन है। साधन कभी साध्य नहीं हो सकता।

दुनियां से भाग नहीं सकते। सभी कुछ दुनियां के अंदर ही है। कर्म तो करना ही है पर उसमे लीन नहीं होना चाहिए। हमे अपना कर्तव्य पालन तो करना ही है। अपने कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा। इसी प्रकार दुनियां के फर्जों (कर्तव्यों) को पूरा करते हुए परमात्मा से सच्चा प्रेम रखो। हर चीज उसकी समझ कर भोगो। इससे दुनियां भी बन गयी और मरने के बाद मोक्ष भी मिल जाती है। यानि सच्चा कर्म करना है।

पहले ध्यान आता है बाद में सुमिरन। सुमिरन दिल से होता है। ॐ, राम आदि सभी नाम उसी के हैं पर गुरु जो नाम देता है उसमे ही उसे चित्त देना चाहिए। उससे लाभ होगा। जिस नाम में शक्ति नहीं है उससे लाभ नहीं हो सकता। उसके लिए (साधक के लिए) गुरु द्वारा बताये या दिए गये नाम में ही शक्ति है। कुरान शरीफ में एक आयत आई है जिसमे लिखा है कि एक बन्दा (बन्दगी करने वाला, भक्त) मेरी तरफ एक कदम (पग) चलता है तो मैं उसकी तरफ चलता हूँ। अपनी इच्छाओं को गुरु में लय कर दो। दुनियां आग का गोला है। दुनियां में आग लग रही है, हर तरफ मुसीबत ही मुसीबत है। दुनिया में आराम कम है दुःख ज्यादा है। पहले दुःख को दूर करने का उपाय मरो, फिर पूछना कि दुःख क्यों बना और दुनियां क्यों बनी है। इन बैंटन के पूछने से दुःख दूर नहीं होगा। पहले दुःख को दूर कर लो उसके साथ ही साथ सब सवाल हल हो जायेंगे। और जो इन सवालों के चक्कर में पड़ गये तो न तो दुःख दूर होगा न तुम्हारे सवाल हल होंगे। यह भी मन का बड़ा धोखा है कि इन सवालों में फंसा कर वक्त को हाथ से निकाल देता है। मौत का कोई वक्त नहीं है। इसलिए आग लगने का कारण ज्ञात करने की अपक्षा पहले उसे बुझा लो, फिर आग लगने का कर्ण पूछना। पहले परमात्मा हुआ या मैं , पहले प्रकाश हुआ या शब्द, उसके झगड़े को छोडकर, पहले आत्मा का दर्शन कर लो, फिर वह राज़ (रहस्य) अपने आप्खुल जाएगा। लोग झूठा ज्ञान लेकर व्यर्थ तर्क में समय नष्ट करते हैं। यह हालत किताब पढने वालों की है। किताबें इस बात की Confirmation (पुष्टि) के लिए है कि जो हमे महसूस (अनुभव) हुआ है सही है या गलत। किताबों का ज्यादा पढना बेकार कि बातें हैं। पहले सच्चे गुरु कि संगती में रहकर दिल कि किताब पढ़ लो। उसके बाद किताबों से मिलाओ। एक तो सच्चे गुरु को मिलना मुश्किल है। मिल जाए तो लग लिपट कर अपना काम बना लो। व्यर्थ तर्क और विवाद में पदक्र अपना समय नष्ट मत करो एक कहानी जो नीचे दी जा रही है अत्यंत शिक्षाप्रद है।

जब रावण का अंतिम समय आया तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि कल दुनियां का सबसे बड़ा ज्ञानी मारा जायेगा उससे कुछ सीख लो, जाओ उससे ज्ञान प्राप्त कर आओ। लक्ष्मण जी रावण के पास गये। उसने पूछा—"कौन ?" उन्होंने उत्तर दिया "मैं लक्ष्मण हूँ ।" फिर पूछा – "कैसे आये हो ?" लक्ष्मण ने कहा – "कल तुम्हारा अंतिम समय है। ज्ञान सीखने आया हूँ।" रावण ने उत्तर दिया – "लौट जाओ, तुम ज्ञान नहीं सीख सकते।" वे लौट आये और सब बातें राम से कही। राम ने उनको साथ में लिया और फिर रावण के पास गये और परों की तरफ खड़े होकर अहिस्ता अहिस्ता उसके पैर दबाने लगे। उसने फिर पहले कि तरह पूछा – "कौन ?" राम ने उत्तर दिया – "मैं राम हूँ।" रावण ने कहा – "बड़ा अच्छा हुआ। मेरा अंतिम समय समीप है, चले आये। देखो दुनियां के विषय में कभी जल्दी न करना और परमार्थ के काम में कभी देरी न करना। कल शुरू करना है तो आज ही प्रारम्भ कर दो। दुनियां का काम करने से पहले खूब सोच समझ लो।"

परमार्थ कि कमाई शुरू होने पर अपने आप मन परमात्मा की ओर लगने लगेगा।

हमारे पतन का कारण

प्रवचन गुरुदेव

(दिस्म्बर १९९९)

आदमी तकिये कि गिलाफ कि तरह हैं। एक गिलाफ का रंग लाल हैं, दुसरे का कला, तोसरे का नीला हैं और चौथे का हर, मगर रुई सबके अंदर भरी हुई हैं। यही हालत आदमी की हैं। एक सुंदर हैं दूसरा बदसूरत (कुरूप), तीसरा भक्त हैं, चौथा बदमाश हैं परमात्मा सबके अंदर बसता हैं। आम तौर पर (सामान्यतया) जीव दो तरह के नजर आते हैं एक तो वह जिनकी विशेषता चाज कि सी हैं और दुसरे वे जो चन्नी कि विशेषता रखते हैं। छाज फ़िज़ूल अनाज भूसी वगैरह को बाहर फेंक देता हैं और अच्छे अनाज को अंदर रख लेता हैं। बिलकुल उसी तरह इस प्रकार के लोग बुरी बातों को सुनकर भुला देते हैं और अच्छी बातो को अपने अंदर रख लेते हैं। बिलकुल इसके विपरीत छलनी काम करती हैं। आटे को जो असल हैं तत्व हैं, छानकर बाहर निकाल देती हैं और भूसी को अपने अंदर रख लेती हैं। इस तरह के आदमी दुसरे अच्छी बातों को तो भूल जाते हैं लेकिन उनकी बुरी बातें अंदर रख लेते हैं। यह हालत हमारी हैं। यूरोपियन यानि पश्चिमी सभ्यता के बुराइयों को हम अपने अंदर भर लेते हैं लेकिन उनकी अच्छाइयों को भुला देते हैं। परमात्मा को छोडकर माया के प्रेमी बन गये हैं लेकिन समय कि पाबंदी स्वदेश प्रेम, परिश्रम और दुःख में भी अपने आप को संभाल कर रखना तथा मुसीबतों का दृढ़तापूर्वक सामना करना, जो उनकी सभ्यता के ख़ास गुण हैं, उनकी तरफ ध्यान नहीं देते। यही हमारे पतन का कारण हैं। संसारी मनुष्य का दिल गोबर के कीड़े (गुब्रिला) के सामान हैं। यह कीड़ा जब रहेगा तो गोबर में ही रहेगा, दूसरी जगह रहना पसंद नहीं करेगा। अगर तुम उसको कमल के फुल के अंदर रखना चाहो तो वह बहुत परेशान हो जाएगा इसी प्रकार संसारी जीव सांसारिक बैंटन के सिवाय और किसी बातों को सुनना पसंद नहीं करेगा। जहाँ

ईश्वर चर्चा होती हैं वहाँ ये कभी नही जायेंगे और जहाँ गपशप हो रही हो वहन इन्हें सुख और आराम मिलता हैं।

इसी तरह एक और उदाहरण हैं। मक्खी दो तरह कि होती हैं – एक तो शहद की मक्खी हैं जो फूलों का रस चुसती हैं, दूसरी वह हैं जो गंदगी और नापाक (अपवित्र) चीजों पर बैठना पसंद करती हैं जिन मनुष्यों पर परमात्मा का प्रेम हैं वे ईश्वर चर्चा के अलावा (अतिरिक्त) कोई दूसरी बात नहीं करते लेकिन संसारी व्यक्ति धन दौलत कि ही चर्चा छेड़ते रहेंगे। अगर कोई उन्हें ईश्वर सुनावे भी तो बात काटकर संसार कि ही चर्चा ले बैठेंगे।

संसारी व्यक्तियों की चेताना महा-कठिन काम हैं। वे हर तरह के दुःख और कष्ट संसार में भोगते रहते हैं किन्तु फिर भी सावधान नहीं होते। ऊंट की हालत की सोचो। वह कांटो और कंटीली झाड़ियों के खाने का प्रेमी होता हैं। काँटों से मुह फट जाता हैं, खून निकलने लगता हैं किन्तु वह कांटे खाना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार संसारी व्यक्ति दुःख पर दुःख उठाते हैं , नित्य मनुष्यों को मरते देखते हैं लेकिन वे यह कभी नहीं सोचते और न ही चेतते कि इन दुखों से बचने का उपाय निकालें। वे यह भूल जाते हैं कि उनको भी एक दिन मरना हैं।

परमात्मा से प्रेम करो, अभ्यास करो और यह मत सोचो कि समय कितना लगेगा।

प्रवचन गुरुदेव – वसंतोत्सव १९६०

सिकंदराबाद (उ०प्र०)

मनुष्य चार प्रकार के होते हैं -

(1) तम प्रकृति वाले (Lower Mind),

(2) सत प्रकृति वाले (Upper Mind),

(3) रज प्रकृति वाले (Middle Mind), तथा

(4) सबसे ऊपर वाले (Super Mind)

(1) तम प्रकृति वाले (Lower Mind) -

इनकी हालत मनुष्य शरीर रखते हुए भी जानवरों की सी होती है। खा-पी लेना, सोना और विषय-भोग कर लेना इनका कर्म होता है। इसी में इनकी सारी ज़िन्दगी कट जाती है। इनमें यह सोचने की शक्ति नहीं होती कि क्या आत्मा और परमात्मा भी कोई चीज़ है, या यह कि मनुष्य को हमेशा की शान्ति और परम आनन्द कैसे प्राप्त हो, इत्यादि। यह जानदार (जीवधारी) होते हुए भी जड़ हैं।

(2) सत प्रकृति वाले (Upper Mind) -

यह लोग धर्म पर चलते हैं, दूसरों पर दया करते हैं, दान-पुण्य करते हैं तथा इन्द्रियों का दमन करते हैं। इनका जीवन दूसरों की भलाई के लिए होता है। पिछले जन्म का कोई बचा हुआ संस्कार इस जन्म में पूरा करके सम्पूर्ण ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करते हैं और दूसरों को रास्ता दिखाते हैं।

(3) रज प्रकृति वाले (Middle Mind) - "यह लोग ऐसे हैं जो डाँवाडोल हैं। इनके अन्दर सुख और दुःख अनुभव करने की शक्ति बहुत होती है। हर वस्तु में सुख की तलाश करते हैं लेकिन वे चीज़ें जिनमें सुख तलाश किया जाता है, दुनियावी, क्षणिक और नश्वर हैं। उनसे हमेशा का सुख नहीं मिलता और उनसे प्रेम करने का फल उदासी और दुःख होता है। कोई भी नाशवान वस्तु सुख और शान्ति नहीं दे सकती। शादी, स्त्री, सन्तान, धन, आदि सबमें जीव ढूँढ़ता है सुख, पर पाता है दुःख। उसे शान्ति कदापि नहीं मिलती।

ऐसे लोगों का समूह ज़्यादातर पाया जाता है। यही लोग परमार्थ के अधिकारी होते हैं लेकिन संस्कार और अक़ल के लिहाज़ से इनके दर्ज़े (श्रेणी) अलग-अलग होते हैं। ऐसे लोगों को मदद की ज़्यादा ज़रूरत होती है। थोड़ी सी मदद और लगातार अभ्यास से कोई तो एक जन्म में या चार-पाँच जन्मों में अपना काम बना लेते हैं, आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं और सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करते हैं।

सन्तमत ऐसे ही लोगों के लिए उद्धार का सरल उपाय बतलाता है। करना यह होता है की सुरत शब्द का अभ्यास करके आत्मा की सोई हुई शक्तियों, यानी सत, चित, आनन्द के अनुभव को जगा लें और उस पर से मन और माया के पर्दों को हटा दें। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे वक्त के पूरे सतगुरु की खोज करें और उनसे सुरत शब्द अभ्यास की विधि सीखें।

आत्मा अजर-अमर है। मरते समय जीव की जो इच्छायें शेष रह जाती हैं उन्हीं के आवरण लिए हुए आत्मा शरीर से निकल जाती है और जब फिर से नया शरीर धारण करती है तब जो आवरण उस पर लिपटे रहते हैं उन्हीं के अनुसार प्राणी दूसरे जन्म में कर्म करता है। एक इच्छा पूरी करने के लिए जो कर्म करता है, उससे अनेकों इच्छायें बनती चली जाती हैं। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मृत्यु और नए जन्म होने से आत्मा के ऊपर के आवरण बजाय घटने के और बढ़ते जाते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि कर्म तो करो लेकिन मन के कहने में मत चलो। यह गुलामी है, मन की परतन्त्रता (dependence) है। मन मुरदा है लेकिन आत्मा से शक्ति लेकर काम करता है, यानी आत्मा को नीचे रखता है और स्वयं उसको ढ़ाक लेता है। तुम आत्मा हो, मन नहीं हो। आत्मा सर्वशक्तिमान है क्योंकि वह उस परमपिता परमेश्वर की अंश है जो समस्त शक्तियों का भण्डार है। मन के कहने में मत चलो। जो मन के अनुसार काम करता है वह भंवर में फँसे हुए या दलदल में फँसे हुए मनुष्य की तरह है जो स्वयं बाहर नहीं निकल सकता। कोशिश करो, मेहनत करो, किन्तु सहारा परमात्मा या गुरु का लो। बिना सहारा लिए काम नहीं बनेगा। कोशिश करो, यह पहली शर्त है। गुरु और मालिक को पुकारो और मदद माँगो, यह दूसरी शर्त है। जिस बच्चे को गोद में लिए रहोगे वह निकम्मा हो जायेगा, परिश्रमी नहीं बनेगा और जीवन में कभी सफ़ल नहीं होगा। बच्चा वही सफ़ल होगा जो स्वयं हाथ-पाँव मारे। जो मनुष्य अभ्यास नहीं करेगा उसे सफ़लता नहीं मिल सकती।

मनुष्य में उतनी ही शक्तियाँ हैं जितनी परमात्मा में हैं। अन्तर यह है कि वे शक्तियाँ जीव में दबी हुई दशा में हैं, उनको उभारना चाहिये। संसार से निराश होकर जब हम सच्चे हृदय से परमात्मा को पुकारते हैं तो ऊपर से, यानी मालिक की तरफ़ से शक्ति का संचार या प्रवाह (flow) होने लगता है। धीरे-धीरे दबी हुई शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं। उस मनुष्य

में इन्सान से देवताओं के गुण और फ़िर परमात्मा के गुण आ जाते हैं। अन्तर केवल मात्रा (quantity) का रह जाता है, गुण (quality) का नहीं।

मनुष्य स्वतंत्र है, वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों से वह चाहे तो पशु बन जाय, फ़रिश्ता (देवता) बन जाय और चाहे तो मुकम्मिल इन्सान (पूर्ण मानव) बन जाय। मुशिकलों का सामना करो और प्रकृति यानी माद्दे से ऊपर उठो। उसे अपने नियंत्रण में लाओ। अगर ज़रा सी मुसीबत में घबड़ा जाओगे तो तरक़्क़ी कैसे करोगे, कैसे स्वतंत्र बनोगे ? बच्चे को देखो, जब चलना सीखता है तो गिरता है, माँ सहारा देती है, फिर गिर जाता है, चोट खाता है और माँ फिर सहारा देती है। इसी तरह अभ्यास करते-करते एक दिन ऐसा आता है जब वह स्वयं चलने लगता है। माँ की निर्भरता (dependence) उसे नहीं रहती और वह इस मामले में आज़ाद (स्वतंत्र) हो जाता है। तुम भी कर्म करो, अभ्यास करो और यदि सफ़लता नहीं मिलती तो घबड़ाओ मत, चिन्तित मत होओ और उदास न हो। परमात्मा जो तुम्हारी असली माँ है, तुम्हें मदद देगा और धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते तुम एक दिन स्वतंत्र हो जाओगे। माया से, आवागमन से, जन्म-मरण के दुःख से, सदा के लिए छूट जाओगे।

परमात्मा ने तुम्हें बुद्धि दी है और कर्म करने की स्वतंत्रता दी है। जो काम करो, ख़ूब सोच-समझकर करो। यदि असफल होते हो तो रोओ और मदद माँगो। जो मालिक तुम्हारी तरफ़ देख रहा है वह आयेगा और किसी न किसी रूप में तुम्हारी सहायता करेगा। लेकिन हर काम में नियत (motive) देखी जाती है। तुम्हारी भी नियत देखी जायेगी। परमात्मा बिना प्रेम के किसी की ओर राग़िब (आकृष्ट) नहीं होता। दुनियाँ में भेजकर उसने हमें अपने से अलहदा तो नहीं कर दिया है, लेकिन पहले अपनी तरफ़ तो देखो, क्या दरअसल हम उसे अपना समझते हैं ? क्या हमारी लगन उसके साथ सच्ची है ? अगर हम दुनियाँ के

सुखों से सुखी होते हैं तो उस तक नहीं पहुँचते, उन सुखों में ही फँस कर रह जाते हैं। उसकी दया यही है कि जो हम दुखी हैं। इसके कारण हम उसे चाहते तो हैं, उसे याद तो कर लेते हैं। धन, विद्या, बाल-बच्चे, स्त्री इत्यादि रास्ते की रुकावटें हैं।

असफलता की बात भूल जाओ। देखो जब एम.ए. पास करना चाहते हो तो पहली कक्षा से पढ़ना आरम्भ करते हो और उससे ऊपर की कक्षायें पास करते-करते एम.ए. पास करने में कई साल लग जाते हैं। जब संसार की विद्या प्राप्त करने में कई वर्ष लग जाते हैं तो ब्रह्मविद्या जो आध्यात्मिक विद्या है, उसे प्राप्त करने में ज़ल्दी कैसे हो सकती है ?कोई बिरला ही ऐसा संस्कारी होता है जो इसे एक ही जन्म में प्राप्त कर लेता है वरना पाँच जन्म या कम से कम तीन जन्म तो ज़रूर लग ही जाते हैं। पूर्ण विश्वास (full faith) और दृढ़ निश्चय (complete determination) से काम करना चाहिये। संतों ने झूँठ नहीं कहा है। रामचन्द्र जी महाराज ने पहले वशिष्ठ जी को गुरु बनाया। वशिष्ठ का अर्थ है full* determination (पूर्ण या दृढ़ निश्चय) यानी अपने अन्दर पूर्ण दृढ़ इच्छा-शक्ति पैदा की। उसके बाद उन्होंने विश्वामित्र जी को गुरु बनाया। विश्वामित्र का मतलब है - सँसार का मित्र (good to all)। इसके बाद उन्होंने जनकपुरी में जाकर यानी हृदय-चक्र में स्थित करके अपने मन को एकाग्र किया यानी सीता जो मन की शक्ति है उसे वश में किया और यज्ञ में गुरु-कृपा से धनुष्य तोड़ा अर्थात आज्ञा-चक्र से ऊपर गए। फिर बन्दरों की सेना इकट्ठी करके रजोगुणी मन यानी रावण को मारा। फिर विभीक्षण यानी सतोगुणी बुद्धि को राज्य दे दिया।

(४) चौथे प्रकार के जीव वे हैं जो Supper mind पर हैं यानी मन से ऊँचे उठ गए हैं। जिन्होंने मन की तीनों वृत्तियों को जगा कर अपनी इच्छाओं का दमन कर लिया है या उन्हें अपने वश में कर लिया है, आत्मा का अनुभव कर लिया है और उसकी शक्ति को जगा लिया है। इनमें से

एक प्रेम की शक्ति है और उसी प्रेम की सहायता से अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगा दिया है। ऐसा मनुष्य सब कर्म करते हुए भी कर्मों से न्यारा है क्योंकि कर्म वह पिछले संस्कार-वश कर रहा है। उसने सब दुनियावी ख़्वाहिशों (सांसारिक इच्छाओं) का ख़ात्मा (अन्त) कर दिया है और उसकी सुरत परमात्मा के चरणों में लगी हुई है जिसके कारण उसे किसी कर्म-फल की इच्छा नहीं है। वह कर्म करते हुए भी अकर्ता है। ऐसे ही मनुष्य मुबारिक हैं, धन्य हैं। वह ज़मीन मुबारिक है जहाँ वे पैदा हुए हैं, वह शहर मुबारिक है जहाँ वे रहते हैं, वह जाति और कौम मुबारिक है जिसमें उनका जन्म हुआ है। वे ही परमात्मा के निज पुत्र हैं। यही अवतार और यही पैगम्बर हैं। यह लोग नर रूप में ईश्वर हैं और यही असली गुरु हैं। वे लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं जिनके बीच यह रहते हैं। जो उनके सम्पर्क में आता है वह भवसागर से तर जाता है। वे हज़ारों भूले-भटकों को सही रास्ते पर लगाते हैं और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

तीन चीज़ें हैं -

(1) ख़ूब कोशिश करो

(2) ख़ूब प्रार्थना करो - परमात्मा से, गुरु से, जिसका तुमने सहारा लिया है।

ख़्याली पैर पकड़ लो, रोओ, गिड़गिड़ाओं और शक्ति माँगो।

(3) यह ख़्याल भी मत करो कि नाकामयाबी (असफलता) होगी। अगर कोई बुरी आदत छुड़ानी हो और कोशिश करने, प्रार्थना करने और मदद माँगने से भी न जाती हो तो उदास मत होओ, निराश मत बनो। इसकी ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर नहीं है। सोच लो कि इसी में उसकी ख़ुशी है। कर्म करना तुम्हारा काम है, वह करो। फल की इच्छा रखना तुम्हारा काम नहीं है।

मन को जिस बात की आदत पड़ गयी है उसकी वह याद दिलाता रहता है। किसी काम को छोड़ देने के बाद भी मन उसका ख़्याल दिलाता रहता है ठीक उसी तरह जैसे मिटटी का बर्तन बन जाने के बाद भी कुम्हार का चाक चलता ही रहता है। चोर चोरी छोड़ दे लेकिन हेरा-फेरी से नहीं जाता। कंडील का दीपक बुझ जाने के बाद भी उसमें शक्लें कुछ देर चक्कर लगाती ही रहती हैं, वैसे ही किसी काम को छोड़ देने के बाद भी मन में उन आदतों की याद चक्कर लगाया करती है। लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा जब वह उसे भी छोड़ देगा। जब आत्मा को उस काम में रुचि ही नहीं रही तो मन कब तक चक्कर काटेगा ? जब चिराग़ ही बुझ गया तो कंडील की शक्लें कब तक चलती रहेंगी ? जब शक्ति ही निकल गयी तो कब तक चक्कर चलेगा ?

जिस चीज़ से घृणा करते हो वह तो छूटेगी ही, चक्कर थोड़ी देर का है। जिसकी आपने क़ीमत दे दी वह तो आपको मिलेगी है। जो कर्म आप कर रहे हैं यह आप क़ीमत दे रहे हैं। क़ीमत क्या है ? तुम्हारी जान। चीज़ क्या मिलेगी ? परमात्मा का प्रेम। इस प्रेम की क़ीमत है तुम्हारी जान। ज़िन्दा रहो और परमात्मा मिल जाय, यह असम्भव है। ज़िन्दगी में ही मर जाओ तब वह मिलेगा। मीरा कहती हैं -

" सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय "

असली आनन्द आत्मा में है। वह जिस चीज़ को छूती है या जिस चीज़ पर उसका अक्स पड़ता है, उसी में आनन्द का भ्रम होने लगता है, जैसे बच्चे को शीशे में अपना ही रूप देखकर किसी दूसरे बच्चे का भ्रम हो जाता है। आनन्द बाहर की चीज़ों में नहीं, तुम्हारे अन्दर है। जब तुम उसे महसूस (अनुभव) करने लगते हो तो तुम्हारी चढ़ाई ऊपर को होने लगती है यानी अन्तर की तरफ़ का रास्ता खुलने लगता है। लेकिन मन की आदत जन्म-जन्मान्तर से नीचे की तरफ़ यानी दुनियाँ की तरफ़ जाने की है। यह जिस्म और इसमें रहने वाला मन ही शैतान है जो हर प्राणी को पथभ्रष्ट

करता रहता है, उसे बहकाया करता है, यानी इन्द्रियों में फँसाता रहता है। शैतान किसी इन्सान का नाम नहीं है। दुनियाँ की सारी बुराइयों का नाम ही शैतान है। नतीज़ा यह होता है कि मन नीचे को खींचता है और आत्मा ऊपर को। यह द्वन्द की अवस्था है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहते हैं। आजकल ज़्यादातर अभ्यासियों की हालत यही है। इसमें प्रार्थना करो और गुरु से मदद माँगो। जब तक यह संग्राम समाप्त नहीं होगा, सत पर नहीं आओगे। जब तक इच्छाएँ, ख़्वाहिशें मौजूद हैं, यहीं रहोगे, छुटकारा नहीं होगा और बार-बार नीचे आओगे।

जो सत्संग करते हैं, नित्य अभ्यास करते हैं, उन्होंने रास्ता पकड़ रखा है। वे कभी न कभी Upper mind (सत वृत्ति) पर अवश्य आयेंगे। जो परमात्मा को नहीं पूजते हैं, गिरेंगे। चाहे कितना भी बुरा आदमी हो, लगन से परमात्मा का नाम लेने वाला बहता नहीं है। दीन और दुनियाँ दोनों बना लेता है। दुनियाँ में कर्म पूरे कर लेता है और दीन भी मिल जाता है। जो किसी पेड़ से रस्से के द्वारा बँधा है वह घूमता भले ही रहे परन्तु गिरता नहीं है। गुरु के प्रेम का, परमात्मा के नाम का रस्सा अपनी कमर में बाँध लो। कितने भी भटको किन्तु रास्ते से हटने नहीं पाओगे।

दुनियाँ की ख़्वाहिशात को ज्ञान से दबा कर या भोग कर उनसे उपराम हो जाना ही दुनियाँ का बनाना है। मन की इच्छाएँ पूरी हो जाने पर या मन के उपराम हो जाने पर आत्मा की शक्तियाँ जाग उठती हैं और असली पिता या पति परमात्मा के प्रति प्रेम पैदा हो जाता है। यही प्रेम खैंच-खैंच कर अभ्यासी को परमात्मा के दरबार में ले जाता है और उससे मिलाकर एक कर देता है। फिर हमेशा-हमेशा के लिए अभ्यासी अपनी हस्ती (अहं) मिटा देता है। यही दीन का बनना है। जो प्राणी सच्चे गुरु का सहारा लेकर, उसकी याद को दिल में रखकर और उसके भरोसे पर शुभ कर्म करता है, वह बह सकता है लेकिन डूब कभी नहीं सकता। वह इन्द्रिय भोग में फँस सकता है, लेकिन फिर चेतकर परमात्मा के चरणों में लिपट जाता है। इसके विपरीत जो परमात्मा से विमुख हैं वे

पिछले अच्छे संस्कारों के कारण अच्छी अवस्था में दिखाई देते हैं, लेकिन जब बुरे संस्कारों का उभार होगा तो उनका कोई सहारा न होगा और वह इन्द्रिय-भोगों में बहकर उन्हीं में फँसा रहेगा और डूब जायगा।

तीन बातें करते रहो।

(1) अभ्यास (2) परमात्मा या गुरु से लौ लगाये रहो, और (3) समय कितना भी लगे, इसका ख़्याल मत करो। धीरे-धीरे मन को नियन्त्रण में लाओ। अगर मन नहीं मानता तो लड़ो मत, वरना समय व्यर्थ जायगा। सन्तों का तरीक़ा राज़ी-व-रज़ा का है, हठ योग का नहीं; राजयोग का है।

ईश्वर तुम सबको कामयाबी दे।

प्रेम का स्वरुप

प्रवचन गुरुदेव, गोरखपुर

(दिनांक ३०-४-१९६०)

इस जगत में प्रेम ही असली सार है जिससे तीनों लोकों की रचना ठहरी हुई है। अगर प्रेम न रहे तो सारी रचना नष्ट हो जाय। इस प्रेम के तीन दर्जे हैं।

(1) एक प्रेम इन्द्रियों के भोग के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों से इन्द्रियों को आनन्द मिलता है उनसे हम प्रेम करते हैं।

(2) दूसरा प्रेम मन के कारण होता है, यानी जिन चीज़ों या प्राणियों से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी होने की आशा होती है, उनसे हम प्रेम करते हैं।

(3) तीसरा प्रेम बुद्धि के कारण होता है। बुद्धि से जो हम निर्णय करते हैं कि अमुक वस्तु की प्राप्ति से हमारा लाभ होगा और हमको सुख मिलेगा, उससे हम प्रेम करते हैं। परन्तु यह सभी चीज़ें बदलती रहती हैं, यानी इन्द्रियों का आनन्द, मन के संकल्प-विकल्प और इच्छाएँ तथा बुद्धि की चतुराई, आदि सभी हमेशा बदलते रहते हैं। इससे इन तीनों तरह के प्रेम भी बदलते रहते हैं और इनका कोई भरोसा नहीं है। जिस चीज़ में हमें इन्द्रिय-सुख नहीं मिलता उसे हम छोड़ देते हैं। जिस किसी आदमी या वस्तु से हमारे मन की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, उससे हम अपना सम्बन्ध हटा लेते हैं और अलग हो जाते हैं। जब हमारी बुद्धि हमें यह बताती है कि अमुक आदमी या वस्तु से हमारा स्वार्थ पूरा नहीं होगा तो हम उसे छोड़ देते हैं। इस प्रकार जिस आदमी की सुरत इन तीनों स्थानों में लगी है, अर्थात इन्द्रिय, मन और बुद्धि में लगी है, उसका प्रेम हमेशा क़ायम नहीं रहता।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिये। बुद्धि का स्थान मन और आत्मा के बीच में है। वहाँ इसके दो रूप हो जाते हैं। जब वह दुनियाँ की तरफ़ लगती है तब वह मलिन बुद्धि कहलाती है, और जब वह दुनियाँ को छोड़कर आत्मा की तरफ़ लगती है, तब वह शुद्ध बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि मन के साथ बहती है, यानी मलिन बुद्धि, वह बदलती रहती है और उसका प्रेम भी बदलता रहता है। जो बुद्धि शुद्ध हो जाती है, दुनियाँ और उसके सामान की तरफ़ नहीं ले जाती, वह परमात्मा की तरफ़ ले जाती है और उसका प्रेम भी टिकाऊ रहता है।

इस दुनियाँ की हरेक वस्तु क्षणिक और नश्वर है। अतः उस वस्तु का प्रेम भी क्षणिक और नश्वर होता है, क़ायम रहने वाला नहीं होता। लेकिन जब अभ्यासी मन की इन तीन अवस्थाओं से ऊपर आ जाता है, यानी तम, रज और सत से ऊपर उठ जाता है और आत्मिक अभ्यास करके अपनी आत्मा का अनुभव कर लेता है तो उसकी आत्मिक शक्तियाँ जाग उठती हैं। उसकी आत्मा अपने अंशी कुल मालिक से दुनियाँ का सब व्यवहार करते हुए प्रेम करने लगती हैं। ऐसी दशा में दुनियाँ से वास्ता तो रहता है, लेकिन प्रेम नहीं रहता। चूँकि यह दोनों असल में अनादि हैं, एक ही हैं, हमेशा से हैं और हमेशा रहने वाले हैं, इससे यही सच्चा प्रेम है और विश्वास के लायक है। यही प्रेम सच्चा सुखदायक है। और प्रेम में सुख के साथ दुःख भी है लेकिन इस प्रेम में आनन्द ही आनन्द है।

सत्संगी, सिद्ध, संत-सद्गुरु

सारे संसारी जीव इन्द्रिय-भोग में फँसे हुए हैं और उसी में आते-जाते और चक्कर काटते रहते हैं। इन्द्रियों का सुख शाश्वत नहीं है और इस सुख के साथ विशेष दुःख लगा हुआ है। जो इस सच्चाई को जानकर अभ्यास करता हुआ, आत्मा या परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाकर

अभ्यास करता है, वह सत्संगी कहलाता है। यह छठे चक्र यानी आज्ञा-चक्र से कुछ ऊपर चढ़ गया है। उसके साथ सत्संग करने से कुछ न कुछ इन्द्रियों को वश में करने में मदद मिलती है।

दूसरे अभ्यासी वह हैं जो त्रिकुटी से ऊपर निकल गये हैं लेकिन सतलोक तक नहीं पहुँचे हैं। इनको सिद्ध कहते हैं। इनके साथ सत्संग करने से मन की वासनाएँ दूर होने लगती हैं और मन कुछ एकाग्र होने लगता है।

तीसरे अभ्यासी वे लोग हैं जो सतपद से पार हो चुके हैं। इनके साथ अभ्यास करने से असली परमार्थ बनना आरम्भ होता है और इन्हीं को संत या सद्गुरु कहते हैं। संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिन लोगों को असली परमार्थ की चाह है उनको चाहिए कि संत सद्गुरु की खोज करें और अगर वे सौभाग्यवश मिल जावें तो उनकी संगति से लाभ उठाकर अपना काम बना लें, क्योंकि यह रत्न अनमोल है। और अगर वे न मिल पायें तो किसी साधु की मदद लेकर अभ्यास प्रारम्भ कर दें और संत सद्गुरु मिलने पर उनकी शरण ले लें। अगर संत सद्गुरु न मिलें तो किसी ऐसे साध की संगति अख़्त्यार करें जो किसी संत की सौहबत (सत-संगति) उठा चुका हो और अभ्यास करता हो और त्रिकुटी से या तो पार हो गया हो या होने वाला हो। यदि वह भी न मिलें तो किसी ऐसे प्रेमी-भक्त से, जो किसी साध की संगति उठा चुका हो, अभ्यास सीख कर शुरू कर दे और साध या सद्गुरु की तलाश में रहे। बिना सद्गुरु की शरण लिये और उसका सत्संग किये असली परमार्थ नहीं बन सकता।

अभ्यास के चार तरीके

अभ्यास के सैंकड़ों तरीक़े हैं, परन्तु ग़ौर से देखा जाय तो सब तरीक़े चार हिस्सों में बट जाते हैं।

(1) सलूक -

इस तरीक़े में अभ्यास की विधि बतला दी जाती है और आगे की निशानियाँ बतला दी जाती हैं जिससे अभ्यासी रास्ते को जाँच सकता है कि ठीक चल रहा है या नहीं। इसमें अभ्यासी एक के बाद दूसरे चक्रों को बेधता हुआ स्वयं अपने परिश्रम से आगे बढ़ता है। इस तरीक़े में बहुत वक़्त लगता है और यह रास्ता बहुत मुशिकल है। प्राणायाम के कठिन साधन हर आदमी के लिये सम्भव नहीं हैं। हठयोग की सारी क्रियायें इसी में सम्मिलित हैं। इसमें किसी जानकार के बिना कोई बिरला ही सफल होता है।

(2) जज़्ब (खिंचन) -

इस तरीक़े में गुरु जो स्वयं मजज़ूब यानी खिंचे हुए होते हैं, दूसरे को अपनी जगह पर खींच लेते हैं जिससे सुरत को अपने प्रीतम का ध्यान तो रहता है लेकिन मन नीचे ही रह जाता है जिससे वे दुनियाँ के काम के नहीं रहते। इसमें दोष यह है कि मन नीचे के स्थानों को छोड़कर ऊपर नहीं आता और सब संस्कार दबे रह जाते हैं इसलिए फिर जन्म लेना पड़ता है। अभ्यासी एक जगह ठहर कर रह जाता है और आगे की तरक़्क़ी रुक जाती है।

(3) सलूकुल जज़्ब -

इस तरीक़े में शुरू में ख़ुद रास्ता चलना पड़ता है और इसमें कोई रस नहीं आता। शुरू-शुरू में धीरे-धीरे रास्ता तय होता है और बार-बार इन्द्रियाँ अपने में फँसाती हैं। बाद को गुरु कृपा शामिल

होने लगती है। खिंचावट ऊपर को होने लगती है और रास्ता भी तय होने लगता है। इसमें यह कमी है कि शुरू में रस और आनन्द न मिलने के कारण अभ्यासी अक्सर इसे छोड़ बैठते हैं।

(५) जज़्बुल सलूक -

इस तरीक़े में संत-सद्गुरु अपनी इच्छा-शक्ति (will powe) से मन को एकाग्र कर देते हैं। मन के एकाग्र होने से सुरत भी एकाग्र हो जाती है और ऊपर को चढ़ती है। इसमें अभ्यासी को शुरू से ही आनन्द आने लगता है और अभ्यास में रस मिलने लगता है। दूसरे, संत-सतगुरु नीचे के चक्रों के देवताओं को ऊपर के चक्रों के देवताओं से मिला देते हैं और अपने प्रेम की डोर से बाँध कर अभ्यासी को आत्मा का दर्शन करा देते हैं और उसे असली आनन्द का अनुभव करा देते हैं। इसी को चढ़ाव या अरूज कहते हैं। इसके बाद सलूक यानी मन की गढ़त कराते हैं जिससे आहिस्ता-आहिस्ता अख़लाक़ (चरित्र, सदाचार) ठीक होने लगता है यानी रहनी-सहनी ठीक होने लगती है। इस तरीक़े में आनन्द मिलने से अभ्यासी का शौक (चाव) बढ़ता जाता है और विश्वास पक्का हो जाता है। उसका मन तम से रज पर और रज से सत पर आ जाता है। नीचे गिरने का नाम सूफ़ियों की भाषा में नज़ूल है।

जब तक मन शान्त नहीं हो जाता यानी उसकी सारी वासनाएँ समाप्त नहीं हो जातीं तब तक वह संयमित (तक़मीलशुदा) नहीं कहलाता। संयमित होना या तक़मील होना यह है कि हर शक्ति कायदे में आ जाय। बिलकुल ठीक-ठीक शक्ति का प्रयोग हो। मन की उपरामता मुद्दत (बहुत काल) में होती है और पचास बरस से पहले बहुत ही कम अभ्यासी इस स्थान पर पहुँच पाते हैं। इसमें यह विशेषता है कि अभ्यासी को शुरू में परिश्रम स्वयं नहीं करना पड़ता बल्कि गुरु की कमाई का फ़ायदा मिल जाता है और आत्मा का आनन्द जल्दी से अनुभव हो जाता है। शर्त यह है कि

शिष्य की दुई मिट चुकी हो, उसने अपना अहं पूर्ण रूप से गुरु को समर्पण कर दिया हो यानी पूरी तरह गुरु में लय हो गया हो।

आत्मा का आनन्द ऐसा आनन्द है कि जिसने एक बार उसका अनुभव कर लिया वह उसको कभी भूल ही नहीं सकता। यह ज़रूर है कि अपने-अपने संस्कारों के अनुसार अभ्यासी दुनियाँ की वासनाओं में फँस जाता है लेकिन यह आत्म- अनुभव और उसका आनन्द उसको ज़्यादे देर उसको वहाँ ठहरने नहीं देता और भोगों का ज़ोर कम हो जाने पर फिर उसकी याद सताती है और वह उस भोग को छोड़कर फिर अपने इष्ट की तरफ़ चलने लगता है। इसी तरह धीरे-धीरे आत्मा सब चीज़ों से उपराम होकर अपने प्रीतम के चरणों में पहुँच जाती है और मन हमेशा के लिए शान्त हो जाता है। यह ज़रूर है कि जब तक मन जगत की इच्छाओं से उपराम नहीं होता, आत्मा को परमात्मा की शरण नहीं मिलती और वह दुनियाँ के भोगों में फँसती रहती है। यह रास्ता बहुत सुगम और सफल है लेकिन इसमें गुरु और शिष्य दोनों में दो बातों का होना बहुत ज़रूरी है. गुरु में -

(1) सच्चा गुरु हो यानी जिसने परमात्मा के चरणों में हमेशा के लिए जगह पा ली हो।

(2) वह बेग़रज़ हो यानी शिष्य की सिवाय आत्मिक उन्नति के कुछ न चाहता हो। शिष्य में -

(1) शिष्य को यह पक्का विश्वास हो कि जो कुछ गुरु कहता है उसी पर चलने में उसकी भलाई है, चाहे सख़्ती हो या नरमी, दोनों अवस्थाओं में गुरु में दृढ़ विश्वास रखे।

(2) उसको गुरु से सच्ची प्रीति हो यानी उसके हृदय में सिवाय गुरु के प्रेम के कोई दूसरी चाह न हो और यदि हो भी तो वह सिर्फ़ अपने उद्धार की हो। गुरु में अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पण और लय कर चुका हो।

जितनी कमी इन दोनों बातों में होगी उतनी ही देर आत्मा के साक्षात्कार में लगेगी। यह तरीक़ा है जो हमारे यहाँ बरता जाता है, जिसकी नींव कृपा करके हमारे बुज़ुर्गों ने डाली है। इसमें आत्म दर्शन पहले होता है और आचरण बाद में सुधरता है। फिर परमात्मा की नज़दीकी (सामीप्य) हासिल करने के अतिरिक्त कोई कामना शेष नहीं रहती। इसीलिए कहा है -

अव्वले माँ आख़िरे हर मुन्तहीस्त,

आखरे माँ जेबे तमन्ना तिहीस्त।

(भावार्थ - हमारा प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ औरों का अभ्यास समाप्त होता है, हमारा अन्त वहाँ है जहाँ तमन्ना की जेब ख़ाली हो जाती है - मन में कोई इच्छा शेष नहीं रहती।)

हमारे तरीक़े के भाइयों को जिन्हें अभ्यास में आनन्द तो आता है लेकिन आचरण ठीक नहीं हुआ है, घबराना नहीं चाहिए। यह रास्ता बहुत लम्बा व कठिन अवश्य है परन्तु सफलता उन सभी को मिलती है जो इस पर बराबर चलते रहते हैं। इसका अन्त भी बेमिसाल है यानी इसकी प्रीति के पश्चात कुछ और प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए -

(1) जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करे।

(2) आन्तरिक अभ्यास - ध्यान, भजन, सुमिरन और मनन करते रहें। यहाँ तक कि एक सेकिण्ड के लिये भी अभ्यास को न छोड़ें।

(3) अपने मन के ख़्यालों पर हमेशा निगाह रखें और बुरे ख़्यालों को हटाकर अच्छे ख़्याल कायम करते रहें। निश्चित है कि फ़ायदा होगा।

कथनी, करनी, रहनी

प्रवचन गुरुदेव

(गाज़ियाबाद, १-८-१९६०)

हरेक जिज्ञासु के लिए तीन बातों पर अमल करना ज़रूरी है -

(1) कथनी, (2) करनी, और (3) रहनी।

कथनी - जो लोग सच्चे और पूरे गुरु की तलाश में हैं अगर वे किसी महापुरुष के पास जाते हैं तो वहाँ जाकर अदब से उनके पास बैठ जाना चाहिए और उनकी बात ध्यान से सुनना चाहिए। वे जो कुछ कहें, उस पर ध्यान दें। यदि कोई बात समझ में न आवे तो उस पर उनसे वार्तालाप (discussion) करें और अपनी बुद्धि से सोचें, विचारें। जब तक दिल उस बात को न माने तब तक उसे स्वीकार न करें। इस काम में जल्दी नहीं करनी चाहिए। साल दो साल क्या अगर किसी सच्चे गुरु की तलाश में एक दो जन्म भी लग जायें तो कोई हर्ज़ नहीं।

करनी - कथनी के बाद आती है करनी। जब एक बार दिल इसको ख़ूब पक्की तरह क़बूल कर ले कि जो कुछ यह कह रहे हैं, वह सब सत्य है और यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि यही हमारे पूरे हितेषी हैं, इनकी हर बात हमारी भलाई के लिए ही है, इसमें इनका कोई स्वार्थ नहीं है, इनकी रहनी-सहनी साधारण आदमियों की तरह नहीं है वरन एक आदर्श पुरुष की तरह है, जैसा कहते हैं वैसा ही अपना जीवन इन्होने बना लिया है, इनका हर काम दूसरों की भलाई के लिए ही होता है, तो उन पर पूरी तरह अपना ईमान ले आयें। वे जो कुछ आदेश दें उस पर विश्वास और परिश्रम के साथ व्यौहार प्रारम्भ कर दें। उनके बताये रास्ते को सदैव दुनियाँ के मुक़ाबले में मुख्य समझें। अपना

तन, मन, धन सभी उन पर न्यौंछावर कर दें। हर काम में उनकी बात को मुख्य रखें। दुनियाँ के सब काम करें लेकिन उनको एक कर्तव्य समझ कर करें। अपने को उनमें फँसने न दें। सदैव दुनियाँ से छुटकारा पाने के विचार को अपने सामने रखें।

रहनी - जब करनी करने लग जायें तब रहनी की तरफ़ ध्यान दें। जैसा आपने गुरु से सुना और समझा था, उसके अनुसार अपनी रहनी-सहनी बना लें। अपना चरित्र सुधारने और उसे उच्च बनाने के लिए जो बातें उन्होंने बताई हों उन पर व्यौहार करें। उनका उदाहरण सदैव अपने सामने रखें। उनके चरित्र, रहन-सहन तथा व्यौहार के अनुकूल ही अपने जीवन भी बना लें। नित्य के जीवन में वही काम करें, जिससे वह प्रसन्न होते हों। जैसे बच्चे के हाथ में खिलौना होता है, वह उसे चाहे कभी उठा ले, फेंके, तोड़े-फोड़े या सम्भाल कर रखे। खिलौना निर्जीव होता है, उसे कभी कोई एतराज़ (आपत्ति) नहीं होता, इसी प्रकार की अपनी ज़िन्दगी बना लें। जीते जी मुर्दा बन जाय और अपने आप को पूरी तरह गुरु के समर्पण कर दें। अपनी कोई इच्छा बाकी न रहे, जिस तरह गुरु चलायें, उसी तरह चलें। तब रहनी बनेगी। कबीर साहब ने कहा है -

करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी करै सो नाती।

रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥

जब तक परमात्मा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अपनी जान तक क़ुर्बान (न्यौंछावर) नहीं कर देंगे, तब तक लक्ष्य की प्राप्ती नहीं होगी। जान का क़ुर्बान करना क्या है - जीते जी मर जाना। परमात्मा के प्रेम के अतिरिक्त अपने मन में कोई दूसरी इच्छा शेष न रखें। जब इन बातों पर अमल करेंगे तो सफलता मिलती जायेगी। मीरा कहती हैं -

" सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय "

बिना सूली पर चढ़े पिया की सेज नहीं मिलती।

सवाल यह उठता है कि यह कैसे मालूम हो कि सफलता हो रही है या नहीं ? इसकी पहचान है। सब मत-मतान्तरों और धर्मों का एक ही मत है - सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चा आनन्द और मृत्यु पर विजय, यानी जन्म-मरण से छुटकारा। Complete knowledge, all bliss and everlasting life. यह कब होगा ? जब परमात्मा के चरणों में सच्चा प्रेम होगा और एक-मात्र इच्छा होगी - परमात्मा से मिलने की, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की, सच्चे सुख की प्राप्ति की और जन्म-मरण के चक्र से छूटने की।

उन्नति की पहिचान यह है कि मन दुनियाँ से उपराम होता जाय, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं से, धन-सम्पत्ति और सगे सम्बन्धियों से प्रेम कम होता जाय और परमात्मा की ओर मन का खिंचाव होने लगे। यह एक दिन में नहीं होता, बहुत समय लगता है। मन की चाल को देखता चले। सच्चाई का विचार, भलाई का विचार, ईश्वर-प्राप्ति का विचार - यह सब परमार्थी चालें हैं। इनके अतिरिक्त जितने विचार मन उठाता है, वे सब संसारी हैं और बन्धन में डालने वाले हैं। ईर्ष्या, राग, द्वेष कम होते जाते हैं। सबसे मित्रता और प्यार का भाव उत्पन्न होता जाता है। धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, इन्द्रिय-भोग आदि की ओर से ध्यान हटता जाता है। पहले जिन संसारी वस्तओं में बड़ा आनन्द आता था उनमें अब वह आनन्द नहीं आता। सुरत (attention) जो सब तरफ़ बटी हुई थी, सिमट-सिमट कर परमात्मा की ओर लगने लगती है। परमात्मा की इच्छा पर ही निर्भर रहता है यानी राज़ी-ब-रज़ा हो जाता है।

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है - ईश्वर प्राप्ति, (solar system) तक पहुँचना, परमात्मा के लोक में पहुँचना और पुनः उसमें लय हो जाना। वहाँ तक पहुँचने के लिए मन के स्थान (mental

plane) से गुज़रना पड़ता है। यह अथाह है और इसके तीन रूप हैं - (1) तम, (2) रज , और (3) सत।

(1) तम अवस्था यानी आलस्य - खाना-पीना, इन्द्रिय-भोग और क्रोध । यह पशुओं की अवस्था है ? इससे छुटकारा पाने के लिए कर्म करना चाहिए। कर्म करने से आलस्य दूर होता है। जब तक काम और क्रोध का वेग है, समझ लो अभी तम के स्थान पर हो । काम से संयम (abstinence) करो, क्रोध कम हो जायेगा।

(2) रज - संसारी वस्तुओं की इच्छा करना, प्राप्त हो जाने पर और अधिक प्राप्त होने की लालसा करना, उनसे प्रेम या लगाव हो जाना और उनका अभिमान करना। लोभ, मोह, अहंकार, दुनियाँ की नाशवान वस्तुओं की इच्छा, उन्हें प्राप्त करने की प्रबल चाह, उनके मिल जाने पर थोड़ी देर का सुख और न मिलने पर दुःख। कभी मन में बुराई का ध्यान आना, कभी अच्छाई का। यह बीच का मुक़ाम है। इसमें लोच (elasticity) होती है। जब परमार्थी यानी अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तो मन सत की तरफ़ झुक जाता है और जब संसारी वस्तुओं का ध्यान आता है तो तम की ओर खिंचावट होती है। यह रज का रूप है। मन में जितना ही संसारी वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छा उठती है उतना ही मन उसमें फँसता जाता है और लोभ, मोह और अहंकार पैदा होते जाते हैं।

किसी वस्तु को देख कर या उसका ध्यान करके उस ओर खिंचावट (attract) होना लोभ है। फिर उस वस्तु से लगाव हो जाना मोह है। बाद में उससे प्यार करना, अपने को उसका स्वामी समझना, यह अहंकार है। जब मनुष्य इसमें फँस जाता है तो छुटकारा कठिनाई से होता है। अधिकतर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं।

किसी संसारी वस्तु को भोगने में दोष नहीं है मगर धर्मशास्त्र के अनुसार चलना चाहिए और उसे अपना समझकर नहीं भोगना चाहिए। यदि हम उसे ईश्वर का समझ कर भोगें तो अहंकार (ego) नहीं होता।

(3) सत - यह मन का तीसरा और सबसे उत्तम रूप है। इस स्थान पर पहुँचकर मनुष्य के केवल तीन कर्तव्य रह जाते हैं :- (1) दान, (2) दया, और (3) दमन।

दान - मन अच्छे-अच्छे विचारों का गुनावन करता है। दान करने के विचार पैदा होते हैं। निर्धनों को दान देना, विद्यालय, अस्पताल खुलवाना, धर्मशाला, कुआँ आदि बनवाना, धन-दान में आते हैं। निर्धन बच्चों को पढ़ना, विद्या-दान करना है। भूखों को खिलाना, सदावर्त चलाना, अन्नदान कहलाता है।

(2)दया - उसके मन में दया के अंकुर फूट निकलते हैं, दूसरों को दुखी नहीं देख सकता। मनुष्य हो या कोई जीव-जन्तु, उसे देखकर उसका मन द्रवित हो जाता है और वह रो पड़ता है। हाथ-पाँव से दुखियों की सेवा करता है। सभी प्रकार से अपने कर्तव्य पूर्ण रूप से पूरा करता है। माँ-बाप का ऋण उनकी सेवा करके और उन्हें प्रसन्न करके पूरा करता है। गुरु का ऋण उनकी सेवा द्वारा तथा उनके बताये हुए कर्मों को करके पूरा करता है। देश का ऋण, धरती का ऋण, मित्र का ऋण, स्त्री-बच्चों का ऋण, प्रत्येक के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करके उन्हें पूरा करता है। जो अपने इन कर्तव्यों को पूरा नहीं करता, उसकी मोक्ष नहीं होती।

(3) दमन - अपनी इन्द्रियों का दमन करता है। जिधर इन्द्री जाय उधर न जाने देना, इन्द्रिय-दमन कहलाता है। विषय-भोग से बचना या मन उधर को जाय तो समय नियत कर लेना, ऐसा न होने पर भूखा रहना जिससे मन पर चोट लगे। किसी वस्तु की इच्छा न करना, जिस वस्तु पर मन

चले वह खाने को न देना, स्वादिष्ट और स्वाद-रहित खानों को एक ही तरह खाना - न स्वादिष्ट भोजन में विशेष रुचि और न स्वादरहित भोजन से अरुचि। परमात्मा का नाम अधिक से अधिक लेना - ये सब बातें इन्द्रिय दमन में आती हैं और इनसे मन कमज़ोर होता है।

जब मन की इस तरह गढ़त हो लेती है तब सही तौर पर वह सत के स्थान पर आता है और यहीं से असली परमार्थ प्रारम्भ होता है। इससे पहले जो कुछ करता है, सब धर्म है। परमार्थ प्रारम्भ होने पर उसको परमात्मा के चरणों के प्रेम की झलक मिलने लगती है, आत्मा के गुण प्रकट होने लगते हैं और वह अपने असली प्रीतम की ओर खिंचने लगती है।

अधिकतर मनुष्य रज अवस्था में होते हैं, चाहे वे कितने ही अच्छे और शुद्ध विचार वाले हों। जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है वहाँ तक मन का ही पसारा है। इसका रूप बड़ा ही विशाल है, मन मारा नहीं जा सकता, परन्तु धीरे-धीरे समझाने से और सख़्ती से वश में आ जाता है। जैसे कि किसी बाप का बेटा बुरी आदतों में हठी हो जाता है ऐसे ही हमारी गलतियों से जो हमने अपने मन की हर इच्छा पूरी करके की हैं, यह हठी हो गया है और हमारी इच्छा न होने पर भी हमसे अपनी इच्छानुकूल कार्य करा लेता है। इसे वशीभूत करो। इसके लिए अपने मित्र, अपने परम हितेषी गुरु से मदद लो। समय थोड़ा है और हमें सीमित शक्ति (fixed energy) मिलती है जिसे हम दुनियाँ के कामों में ख़र्च कर देते हैं। वह शक्ति हमें मिलती तो है अपनी आत्मा के ऊपर से परदे उतारने के लिए, आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए, परन्तु वह ख़र्च होती है अन्य साँसारिक बातों में। गुरु से मदद माँगो, शक्ति माँगो, वे तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे और परमात्मा (जो शक्ति का भण्डार हैं) से शक्ति लेकर तुम्हारी आत्मा को बलबान बनायेंगे जिससे तुम अपने मन को अपने आधीन बना सकोगे। बिना गुरु की सहायता के, बिना उनसे अधिक शक्ति (extra energy) प्राप्त किये, कोई

बुरी आदत नहीं छूट सकती। लेकिन गुरु से शक्ति मिलती है केवल उनको जो उनकी इच्छानुसार कार्य करते हैं, जो उनके आदेशों पर चलते हैं।

संसार की हर वस्तु छूटनी ही है। सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। सभी से विछोह होना है। जिस वस्तु से अधिक मन लगाओगे उसके छोड़ने में उतनी ही कठिनाई और कष्ट होगा। यदि स्वेच्छा से न छोड़ोगे तो मृत्यु के समय सभी स्वतः छूट जायेंगी और तब उस समय बहुत दुःख होगा। बच्चे को देखो, अगर वह किसी वस्तु के हठ को छोड़ देता है तो उस पर ध्यान भी नहीं देता। यही आदत सीखो और मन को इसी तरह समझाओ। मन त्रिकुटी का वासी है। वह भी ऊँचे यानी स्वर्ग का सुख चाहता है और दुनियाँ के सुखों में ज़्यादा प्रसन्न नहीं रहता। परन्तु वह दुनियाँ के सुखों में फँस गया है। जब वह इन्द्रिय भोग से उकता जाता है तो स्वयं प्रसन्नता अनुभव करता है। दूसरे यह कि प्रारम्भ में वस्तुओं के छोड़ने में इसे दुःख होता है और इसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। बाद में वह आसानी से भलाई की ओर झुकने लगता है और प्रसन्न रहता है। उसके प्रसन्न रहने से आत्मा भी शान्त रहती है। यह अवस्था उस समय प्राप्त होती है जब मन सत की अवस्था में आ जाता है।

संसार में हमारी पकड़ उतनी ही होनी चाहिए जितनी साँसारिक कार्यों को चलाने के लिए आवश्यक है। अधिक होने पर दुखदायी होगी। संसार की हर वस्तु बदलने वाली है, हमारी इच्छाएँ भी बदलने वाली हैं और ये दोनों ही नाशवान हैं। इनके छूटने पर दुःख होगा। इसी विचार का नाम विवेक है। सोचो, एक दिन सब छूटेंगे, अलहदगी (separation) होगी। इस तरह के विचार से दुनियाँ से लगाव कम होता है। जब किसी वस्तु से प्रेम पैदा हो, यह विचार करो कि यह भी छूटेगी। किसी से शत्रुता नहीं है, समझा समझकर मन को सीधे रास्ते पर लाओ। जब तक नौकरी पर रहते हो वहाँ की हर चीज़ से सम्बन्ध रहता है, अवकाश प्राप्त होने (retire) पर कोई सम्बन्ध नहीं। कारण यह है कि नौकरी के बीच में उसे अपना नहीं समझा इसलिए इसके छूटने पर कोई दुःख नहीं

होता। इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हें भोगने के लिए मिली हैं, तुम्हारी हैं नहीं। यदि यह ध्यान रहेगा तो लगाव (attachment) नहीं होगा। प्रेम करना इन्सानी स्वभाव है, लेकिन उसमें फँसना नहीं चाहिए।

इसका साधन है गुरु का बताया हुआ अभ्यास और गुरु का सत्संग। इससे धीरे-धीरे निचली वासनाओं को छोड़ता चलता है और तम से रज और रज से सत पर आ जाता है। गुरु के संग और सत्संग से आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे अन्दर से दुनियाँ को छूटने के लिए बेचैनी होती है, यही सुरत का जगाना है। फिर वह मन के फन्दे से निकलने के लिए प्रयत्न करती है, रोती-बिलखती है और परमात्मा से मदद माँगती है। परमात्मा की अथाह कृपा की लहरें उमड़ती हैं और मनुष्य रूप में गुरु रूप होकर उसको मदद करती हैं जिससे आत्मा मन के फन्दे से स्वतन्त्र हो जाती है और ईश्वर का प्रेम चमकने लगता है। दिल में एक दर्द बना रहता है जो उसको अपनी असल की ओर खींचता है, चाल को तेज़ कर देता है, रास्ता तय होने लगता है और आत्मा अपने प्रीतम, यानी परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है। यही मोक्ष है और यही निर्वाण पद है। यही हालत ज़िन्दगी में होती है क्योंकि ज़िन्दगी कुरुक्षेत्र है। मौत के बाद भोग योनि है। जो कुछ करना है, इसी ज़िन्दगी में करना है और अभी करना है।

गुरुदेव सबको सही रास्ता दिखावें।

परमार्थ तथा लौकिक व्यवहार

कुछ आदेश कुछ उपदेश

प्रवचन गुरुदेव

(मार्च १९६१)

दुनियां के बनावट का भेद सभी जानते हैं। ब्रह्मांड किस तरह बना यह भी पुस्तकों में लिखा हैं। शरीर कि बनावट का हाल डाक्टरी किताबों में लिखा हैं और उसका सब हाल मालूम हो गया हैं। चक्रों का ज्ञान ऋषियों ने किया हैं। परन्तु आत्मा का ज्ञान वर्णन नहीं किया जा सकता। आत्मा के स्थान पर बुद्धि कि पहुँच नहीं हैं या यों कह लीजिये कि जहाँ तक सोच विचार की पहुँच हैं आत्मा उससे आगे हैं। इसलिए वह बयान में नही आ सकती। अब सवाल यह हैं कि वहन कैसे पहुंचा जाए ?

संसार के भूले भटके जीवों पर दया करके परमात्मा अपनी शक्ति धार नर छोले में भेजता हैं। यही शक्ति तालीम करती हैं। आत्मा और परमात्मा का भेद खोलती हैं। यही उपर से उतरी हुई शक्ति अवतार कहलाती हैं। अवतार आते हैं और आत्मा तथा परमात्मा का बोध कराकर आत्मा के साक्षात्कार के साधन बताते हैं। उनकी शिक्षा में सभी बातें आ जाती हैं। दुनियां में किस तरह बरतो और परमार्थ कैसे बनाओ।

आत्मा तक पहुँचने के लिए चार दर्जे हैं –

(१)शरीयत (कर्मकांड) अर्थात शरीर और इन्द्रियों कि शुद्धि। (२) तरीकत अर्थात मन और अन्तःकरण कि शुद्धि। (३) मार्फत अर्थात बुद्धि कि शुद्धि और (४)हकीकत अर्थात आत्मा का ज्ञान।

इन चहरों में से पहले तीन दर्जो को तो और लीग भी बताते हैं और जिज्ञासु अपनी योग्यता के अनुसार उन्हें ग्रहण करते हैं परन्तु हकीकत (आत्म ज्ञान) खास खास शिष्य ही पाते हैं। जैसे श्री कृष्ण भगवान ने शिक्षा सबको दी पर असली आत्मा का भेद केवल अर्जुन को ही बताया। हजरत मुहम्मद साहब ने ४० आदमियों को परमार्थ कि तालीम दी पर खास तालीम सिर्फ चार ही शिष्यों को दी । इसी प्रकार ईसामसीह ने बहुत ने बहुत से प्राणियों को शिक्षा दी लेकिन मुख्य शिक्षा चार या पांच आदमियों को ही दी।

जब ऐसे महापुरुष जिन्हें अवतार कहते हैं परमधाम को वापिस जाते हैं तो अपना सिलसिला (श्रृंखला) कायम रखने के लिए किसी को चुन लेते हैं। वह ऐसा व्यक्ति होता हैं जिसकी तकमील (अध्यात्मिक पूर्णता) तो हो चुकी होती हैं लेकिन माया का झीना पर्दा उसकी आत्मा पर पड़ा रहता हैं जो उन महापुरुष के संग और सत्संग से दूर हो जाता हैं। वही मनुष्य गुरुमुख कहलाता हैं। अपने जीवन में वह गुरु के मिशन को लोगो तक पहुंचाता हैं और शरीर छोड़ने से पहले किसी गुरुमुख शिष्य को इस काम के लिए नियुक्त कर देता हैं। इस तरह यह सिलसिला बराबर चलता रहता हैं। जि शिक्षा अपने गुरु के मुख से सुनी हैं उसी पर उनका विश्वास होता हैं और वही उनका धर्म हैं। जैसे ऊँटों का काफिला हो – पहले ऊंट कि नकेल ऊंट वाले के हाथ में होती हैं और एक के पीछे एक, इस तरह पिछले ऊँटों कि नकेल अगले उतों के दुम में बंधी रहती हैं, एक सिलसिला सा बंध जाता हैं जो अटूट रहता हैं। जिधर ऊंट वाला ले जाता हैं उधर ही एक के ओइछे एक, सभी ऊंट चल देते हैं। उनका रास्ता कोई अलहदा नहीं होता। वे तो केवल आगे वाले का अनुगमन (follow) करते हैं। इसी प्रकार गुरु ने जो इर्शादात (वचनामृत) किये हैं वही महावत हैं। हम सब अनुगामी (followers) हैं। अगर शिष्य ने उन्हीं को अपने जिन्दगी का रहबर (पथ प्रदर्शक) बनाया हैं तो एक न एक दिन वह उनमे पूरी तरह लय हो जाता हैं। इसी को 'निस्बत'

कहते हैं। जो शक्ति और गुण गुरु में होते हैं ठीक वैसे ही शिष्य में उतर आते हैं। वहन अपनी बुद्धि और चतुराई से काम नहीं चलता। गुरु वचन ही को ब्रह्म वाक्य माने और जिस तरह वे चलाए उसी तरह चले। यदि अपनी बुद्धि और चतुराई को सामने लायेगा तो फनाइयत (लय होने) में कमी होगी। जहाँ शिष्य मन के स्थान पर आ गया और मनमानी करने लगा वहां सिलसिला खत्म हो जाता है।

आपके इस सिलसिले में ३६ गुरु हुए हैं और जो बरकत पेशवाये अव्वल (प्रथम गुरु) के वक्त ठी वही अब भी कायम हैं। जब तक गुरु को सामने रखकर उनके कदमों पर चलते रहेंगे, निस्बत कायम रहेगी। अगर उनसे प्रेम में कमी आई तो धीरे धीरे सिलसिला बंद हो जाएगा।

हमारे गुरुदेव ने अपने बहुत से उसूल किताबों में दर्ज किये हैं और बहुत से एकांत में जबानी बतलाये हैं। हमारे यहाँ यह तरीका है कि हम किसी भी तरीके की बुराई नहीं करते, सबको ठीक मानते हैं लेकिन जो तरीका हमारे बुजुर्गों ने चले वह निराला और सबसे आसान है। इसमें अपने मन से तरमीम या तब्दीली करने का हरेक को अधिकार नहीं है। बीच बीच में संत आते हैं जो मुजद्दिद कहलाते हैं और जो वक्त और जमाने व जीवों की हालत के अनुसार तब्दीली कर सकते हैं क्योंकि वो ज्यादा शक्ति लेकर आते हैं। बाकी सब तालीम दे सकते हैं और सिलसिला कायम रखते हैं लेकिन कोई तब्दीली नहीं कर सकते। ऐसे संत (मुजद्दीदी) ११०० या १२०० साल बाद आते हैं।

ऐसे गुरुमुख शिष्य को जो पूर्ण रूप से अपने गुरु के हुक्म की तामील करे उसे इजाजत तालीम (शिक्षा देने कि अनुमति) दे देते हैं।

हर एक समाज में चाहे वह दुनियां का काम कर रहा हो या दीन का, कुछ नियम होते हैं, जिन पर अम्ल करने की (चलने की) लोगो को नसीहत कि जाती हैं। हमारे गुरुदेव के भी दुनियावी जिन्दगी बसर करने और अभ्यास वगैरह के मुतल्लिक कुछ अकायद (नियम) थे। उन्होंने उन उसूलों को अपने उपर पूरा पूरी तरह निभाया। उनमे से कुछ यह हैं –

१. *हरेक मनुष्य का कर्तव्य हैं कि जब तक जीवित रहे और हाथ पाँव शि रहे तो अंत तक अपनी रोजी आप कमावे। अगर वह बुढा हैं, कोई भरी भरकम काम करने योग्य नहीं हैं तो हल्का सा काम घर का ही कर ले। जो कमावे वो हक हलाल का हो। बच्चों को पढ़ाने या घर की देखभाल का काम ले ले। कहने का मतलब यह हैं कि हर आदमी काम करे, हराम की न खाए।*
२. *सेवा करो, कराओ मत। जो काम खुद न हो सकता हो नौकरों या छोटे भाईयों से ले लो। लेकिन जो काम तुम कर सकते हो वह दूसरों पर मत छोडो जब तक कोई खास मज़बूरी न हो।*
३. *अगर चाहते हो कि दुनिया हो कि दुनियां में खुश रहो तो अपनी इच्छाओं को कम करो। अगर एक या दो जुतें हैं तो तीसरा मत खरीदो। बहुत सा सामान मत भरो। अपनी आमदनी का कुछ न कुछ हिस्सा खैरात करो। उसमे पहला फर्ज़ यह हैं कि अपने जरुरतमन्द अजीजों (सम्बन्धियों) को दो।*
४. *जब तक तुमसे कोई पूछे नहीं बगैर मांगे नसीहत मत दो।*
५. *बड़ों की इज्जत और छोटों से प्रेम करो। औरों के बच्चों से अपनी ही औलाद की तरह प्रेम और व्यवहार करो।*

६. अगर अपना कोई रिश्तेदार गलत रस्ते पर जा रहा हो तो उसे समझा बुझाकर रहे रस्ते पर लाने की कोशिश करो, वरना उससे सम्बन्ध तोड़ दो।

७. विधवाओं कि मदद करो और अगर उनकी रजामंदी हो तो उनके विवाह कराओ।

८. सबसे बराबरी का वर्ताव करो। लेकिन दफ्तर का बर्ताव वहां के कायदों के मुताबिक होना चाहिए।

९. जो लोग ओहदेदार (पदाधिकारी) हैं उनकी इज्जत करो क्योंकि ईश्वर उन्हें इस योग्य बनाया हैं कि वे बड़े ओहदे पर हैं। हमारा भी फर्ज़ हैं कि जिसे परमात्मा ने बडाई दी उसकी इज्जत करें।

१०. जुआ मत खेलो।

११. औरत बच्चों की सोहबत से जहाँ तक हो परहेज करो।

१२. खाली वक्त न बैठो। कुछ न कुछ करते रहो। एकांत सेवन ज्यादा करो और बराबर अपने शगल (अभ्यास) में मशगुल (व्यस्त) रहने कि कोशिश करो।

१३. जो कपड़ा पहनो वह साफ़ और मजबूत हो मगर कीमती न हो। हमारे गुरुदेव रेशमी कपड़ा पहनना पसंद नहीं करते थे।

१४. जेवर (गहने) औरतें कम से कम पहनें। मर्द सिर्फ एक अंगूठी पहन सकते हैं।

१५. जो आदतें नुक्सान देने वाली नहीं हैं (जैसे पेट के दर्द में तम्बाकू पीना) उनके अलावा शौक के लिए कोई आदत नहीं डालनी चाहिए।

१६. खाने पिने में जो चीजें छोड़ने लायक हैं (जैसे प्याज आदि) उन्हें छोड़ देना चाहिए। अगर वे नहीं छुट्टी हैं तो ज्यादा तवज्जोह मत करो। गोष्ट वगैरह खाने कि सख्त मनाही हैं।

१७. अगर स्त्री मर गयी हो और नफ्स (इन्द्रिय भोग) पर काबू न हो तो चाहे बुढा ही क्यों न हो, फिर से शादी कर लेनी चाहिए।

१८.गुरुदेव सत्संगियों के साथ ही ज़मीन पर सोया करते थे। अगर चारपाई पर सोना होता तो अलहदा हो जाते थे। बहर हाल तहज़ीब का बड़ा ख्याल रखते थे

१९. खाना सबके साथ खाते थे। जैसा सब खाते थे वैसा खुद भी खाते थे। अकेले में तथा औरों से अच्छा खाना नहीं खाते थे।

२०. रात को दस बजे के बाद आराम फरमाते थे और पांच बजे सबेरे तक बिस्तर छोड़ देते थे।

२१. पान कभी कभी खाते थे। गोष्ट कभी नहीं खाते थे।

कबीर पंथी, नानक पंथी, राधा स्वामी मत और बुद्ध भगवान का मत –इन सबसे आपके यहाँ इजाजत हैं। इन सिलसिले के महापुरुषों से हमें फायदा पहुंचा हैं और हमारे बुजुर्गों ने उनके अनुयाइयों को फायदा पहुंचाया हैं। इन सिलसिलों के बुजुर्गों की अपने ही बुजुर्गों की तरह इज्जत करते थे । हर समय बुजुर्गों से मदद मांगते थे। अपनी जिस्मानी माँ बाप का दुआ के जरिये रोज़ श्राद्ध करते थे।

'हमारा साधन'

(१) हमारे यहाँ का अभ्यास का तरीका हृदय से हैं जिसे जिक्र खफी कहते हैं। जिसमे प्रकाश या शब्द का ध्यान करते हैं। परमात्मा कि शक्ति कि धार जो उपर से उतरी, पहले उसका असर दिमाग पर पडा। उसका ठहराव वहन हुआ, उसके बाद अलग अलग मुकामों से उतरती हुई उसका असर दिल पर पड़ा। उसी शक्ति की धार को सुरत कहते हैं। शब्द में ॐ या राम या जो कोई और शब्द बताया जाए उसका ख्याल करते हैं।

(२) साधन शगल राबता (गुरु स्वरुप का ध्यान) कहलाता है। इसमें हृदय पर गुरु मूर्ति का ध्यान करते हैं।

जो अभ्यासी आशिक मिजाज़ होते हैं अर्थात जिनमे प्रेम का भाव अधिक होता है उन्ही को गुरु मूर्ति का ध्यान करने की इजाजत दे देते हैं। ज़बान से नहीं कहते। हरेक अभ्यासी के लिए गुरु मूर्ति का ध्यान नहीं बताया जाता। हृदय पर गुरु मूर्ति का ध्यान , या अंदर शब्द का अभ्यास या प्रकाश का ध्यान यह अभ्यासी की हालत पर निर्भर करता है। जैसा जिसको मौजूं (ठीक) समझते हैं वैसा अभ्यास उसके लिए तजबीज करते हैं। शब्द का अभ्यास देरपा (lasting) और बेहतरीन है। यह सीधी सड़क है जिसमे भटकाव नहीं है। प्रकाश और गुरुमूर्ति का ध्यान डिग सकता है। पर यदि गुरु से प्रेम पैदा हो गया है और गुरु मुकम्मिल (पूर्ण) है तो अकेला वही प्रेम का खिंचाव निकाल ले जाता है। अभ्यास शुरू शुरू में दिन में दो या तीन वक्त फिर पांच वक्त और फिर आगे चलकर हर समय करने को बताया जाता है। जो अभ्यास हर वक्त होता जा रहा है उसको दिल का जाप कहते हैं।

यही संतों का तरीका है। मुझको गुरुदेव ने सूरत शब्द की तालीम दी। उपर का ध्यान सूरत शब्द योग का है। नीचे का जिक्र खफी है।

३. तरीका क्या है ? गुरु अपनी इच्छा शक्ति से शिष्य के हृदय में शब्द, या प्रकाश या गुरुमूर्ति के ध्यान का बीज दाल देता है। इससे शुरुआत कराई जाती है। शिष्य उसी का अभ्यास करता रहता है और उसकी तरक्की आगे के मुकामों तक होती जाती है।

४. धार्मिक पुश्तकों की इज्ज़त चाहे वह वेड हो या कुरान, अंजिल या गुरु ग्रन्थ साहिब। किसी का निरादर नहीं। यदि गुरु ने किताबों के विपरीत बतलाया हैं तो उसे ही सही मनो और उसके मुकाबले में किताबों के लिखे पर ध्यान न दो।

५. यदि कोई बुजुर्ग और किसी दुसरे सिलसिले के आ जाएँ तो उनको सर आँखों पर रखना, उनका आदर सत्कार करना लेकिन तरीके के मुताल्लिक (सम्बन्ध में) बात न करना। अगर कोई बुजुर्ग तुमरे सिलसिले के नहीं हैं तो बिना अपने गुरु की आज्ञा लिए उनके पास मत जाओ। हां अगर पुख्तगी आ गयी हैं तो अलबत्ता यस बंदिश नहीं हैं।

६. शुरू में धार्मिक पुस्तकें मत पढो। गुरु की मौजूदगी में दिल की किताब पढो और उन्हीं में अपने को फना (लय) कर दो। परमात्मा या गुरु के ध्यान में लय कर दो।

७.गुरु खूब देखकर करो। इस काम में चाहे एक जन्म क्यों न बीत जाए मगर वक्त के ऐसे पुरे सतगुरु को धारण करना चाहिए जिसे अपनी जान तक अर्पण कर सको।

८. गुरु करने के बाद यदि श्रद्धा में कमी आवे तो उनसे निवेदन करो, वे उसे हटा देंगे। यदि वे नहीं हटा सके तो उन्हें छोड़ दो।

९. पुराने बुजुर्गों कि इज्ज़त करो। मगर फायदा मौजूदा बुजुर्गों से ही होगा।

१०. यदि गुरु का शरीर छुट जाए और आत्मा का साक्षात्कार न हो पाया हो तो अपने सिलसिले के के किसी योग्य भाई को अपना बड़ा भी मान लो। अगर उपर से मदद मिलने लगी हो तो दूसरा गुरु करने की जरुरत नहीं, वरना अपने सिलसिले के ही किसी मौजूदा बुजुर्ग को अपना गुरु बना ले।

११. गुरु कि औलाद कि बेकद्री न करो, उसमें गुरु का अंश मौजूद है।

१२. अगर गुरु नहीं मिले हैं तो सफर (देशाटन) करो और गुरु की तलाश करो अगर मिल गये हैं तो वही तीरथ व्रत हैं। कहीं आने जाने की जरूरत नहीं हैं। अगर तुम्हें इजाजत हैं तो मौके व् मौके घूमों ताकि औरों को फायदा हो, प्रोपगंडा न करो।

१३. गंडा तावीज और चमत्कारी शक्तियों से परहेज़ करो। इससे गिरावट होती हैं।

१४. अपनी हालत किसी से बयान मत करो। लिख कर या ज़बानी गुरु के सामने पेश करो।

१५. अदब से रहो। अदब यह कि जो शगल बताया गया हैं वह करते रहो। जो ख्यालात गुरु रखते हों वैसे ही अपने बनाओ।

१६. हमारे गुरुदेव पैर छुआने के खिलाफ थे। फोटो खिंचवाने से परहेज़ नहीं था पर उसकी पूजा मना हैं।

१७. सत्संगियों में प्रेम देख कर खुश होते थे। सब मिलकर एक परिवार की तरह रहें, ऐसा उनका ख्याल था।

१८. माया का निरादर न करो मगर माया के पुजारी भी न बनो।

अगर सत्संगी इन नियमों पर चलेंगे तो लाभ उठाएंगे और बुजुर्ग उन पर खुश होकर अपनी कृपा की वर्ष करते रहेंगे।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

संतमत का आधार गुरु प्रेम तथा गुरु सेवा हैं

प्रवचन गुरुदेव

(तिथि – १०-२-१९६९)

संतमत की नींव प्रेम पर हैं। यह प्रेम मार्ग हैं। इसके जितने भी अभ्यास हैं सबमे प्रेम शामिल हैं और प्रेम के साथ जब तड़प भी शामिल होती हैं तब अच्छा परिणाम निकलता हैं। इस तरीके में दो ही साधन मुख्य हैं।

पहला प्रेम और दूसरा दीनता। पिंडी हृदय का स्थान सभी इच्छाओं का बासा हैं। उसमे तमाम इच्छाएं दबी रहती हैं और परमात्मा का प्रेम भी दबा रहता हैं। जब तक परमात्मा का प्रेम सब सांसारिक इच्छाओं के उपर नहीं आ जाता परमार्थ बनना प्रारम्भ नहीं होता। यह प्रेम दो ही हालतों में सब इच्छाओं के उपर आता हैं। पहला दुनिया कि ख्वाहिश (इच्छाओं) को भोगकर उपराम होने पर या दुनियावी दुखो से परेशान होकर या दुनियांवी दोस्तों, सम्बन्धियों की बेवफाई देख कर या किसी प्रियजन की मृत्यु से। किसी तरीके से दुनियां से उदासीन होने पर ही यह प्रेम उभरता हैं।

दूसरा तरीका यह हैं कि किसी संत कि निगाह उस पर पड़ जाए या उसको किसी संत से प्रेम हो जाए, क्योंकि संत परमात्मा के प्रेम की मुजस्सिम (प्रत्यक्ष) मूर्ति होते हैं। उनसे प्रेम करने में या उनकी निगाह किसी पर पड़ने से परमात्मा के प्रेम का आनन्द महसूस होता हैं जो इतना मीठा और आकर्षक होता हैं कि जिसने उसका एक बार भी रसास्वादन कर लिया वह उसको

कभी भी नहीं भूल सकता और उसके मुकाबले में अंतर के घात का प्रेम कोई भी हैसियत नहीं रखता । जिस अभ्यासी ने आत्मा के आनन्द का अनुभव कर लिया है वह यद्यपि संस्कारवश सांसारिक वासनाओं में फंसता है परन्तु वहाँ ठहर नही सकता । जब जब उसे आनन्द का ख्याल आता है इन्द्रिय आनन्द और मन की वासनाओं से अपना पिंड छुडाकर भागता है । इस प्रकार परमात्मा या गुरु के प्रेम के प्रभाव से सभी मन की इच्छाओं को भोग कर उपराम हो लेता है और इस तरह से सभी भोगों और इच्छाओं को , जिनको भोगने उसकी जीवात्मा इस संसार में भेजी थी, भोग भी लेता है ।

यही दुनियां का बनना और उससे उपराम हो जाना है । जब आत्मा के उपर से तमाम भोगों और वासनाओं के पर्दे हट जाते है और आत्मा नंगी हो जाती है तो परमात्मा का प्रेम जो उसका असल है, जाग उठता है । यही परमार्थ का बनना है । अब जीव कि खिंचावट परमात्मा कि ओर होती जाती है । ज्जितना आगे बढ़ता जाता है प्रेम भी बढ़ता जाता है और जो कुछ इच्छाएं बीज रूप में मौजूद भी है वे जलकर राख हो जाती है । जितनी सफाई होती जाती है उतनी ही तेजी उसकी रफ्तार (गति) में भी होती जाती है और एक दिन दोनों मिलकर एक हो जाते है । यही फजल (कृपा) का तरीका है जिसमे न कुछ अभ्यास है न कुछ मशक्कत ही और न रियाज़त । सिर्फ प्रेम को जगाना होता है । परमात्मा से प्रेम प्रारम्भ में बिरले ही किसी को होता है और प्रारम्भ में परमात्मा का प्रेम प्राप्त करने का प्रयत्न करना समय का व्यर्थ खोना है । यदि वास्तव में कोई मनुष्य परमात्मा के प्रेम का इच्छुक है और संसार से उदासीन हो चूका है तो सबसे सरल और जल्दी का उपाय यह है कि ऐसे महापुरुष कि तलाश करे जो परमात्मा का सच्चा प्रेमी है । अगर सौभाग्य वश ऐसा व्यक्ति मिल जाय तो मजबूती से उसका दामन पकड़ ले । ऐसे संत का मिलना बड़ा मुश्किल है । अगर न मिल सके तो किसी साधू का सहारा ले, यानि जो रस्ते पर चल रहा है और कुछ रास्ता

तय कर चूका हैं ऐसे भक्त का सहारा लेकर उसके आदेशों पर चले। सब तरफ से तबियत को हटा कर उसकी शरण में आये लक उनमे पूरी श्रद्धा रखे कि यह समर्थ हैं और मेरा उद्धार इनसे जरुर होगा। उनके आदेशों को सर्वोपरी मानकर बिना किसी हिचकिचाहट और संशय के उसका पालन करे। चाहे वह बुद्धि तथा सांसारिक धर्म शास्त्र के विपरीत ही क्यों न मालूम होते हों। यदि पूरा आदेश पालन करेगा और सेवा करेगा तो बिना परिश्रम किये बहुत शीघ्र ही उनके वेशवहार कमाई का वारिस होगा (अमूल्य अक्षय प्रेम भंडार का उत्तराधिकारी होगा)और दुनियां कि इच्छाओं और प्यार से उपर आता जायेगा। धन दौलत से उपराम होकर मन कि वासनाओं को जीत लेने के बाद बुद्धि कि बारी आती हैं। अपनी बुद्धि को उनकी बराबरी में तुच्छ समझे। यही सच्ची दीनता हैं। बुद्धि के फंदे में न फंसे वरना सब करा कराया नष्ट हो जाएगा।

इसके बाद अहंकार कि बारी आती हैं। इसी को Ego कहते हैं। इसी स्थान पर आकर गुरु शिष्य का अहंकार तोडकर उसके अहं को समाप्त करता हैं, उसको अपमानित करता हैं, सबके सामने फटकारता हैं। कभी मार बैठता हैं और घर से बाहर निकाल देता हैं। यह सब प्रेम के वश करता हैं जिससे शिष्य का अहंकार नष्ट होकर आत्मा का साक्षात्कार हो। दिल से प्रेम करता हैं, उपर से झिड़कता हैं। यही अंतिम परीक्षा हैं। इस परीक्षा में हज़ारों में से कोई बिरला ही (जिसमे सच्चा प्यार होता हैं) उत्तीर्ण होता हैं। शेष सभी छोड़ बैठते हैं और उनका आगे का रास्ता रुक जाता हैं। जिज्ञासु को चाहिए कि सब जिल्लत सहे, अपमान प्रसन्नता पूर्वक सहन कर ले परन्तु छोडकर न जाए। संतों की जीवनियाँ देखने से मालूम होता हैं कि करीब करीब सभी संतो की परीक्षा ली गयी हैं। इससे उनका सम्पूर्ण अहंकार मिट जाता हैं और सच्ची दीनता आ जाती हैं जो परमात्मा के प्रेम का एक मुख्य गुण हैं। प्रेम का रास्ता बड़ा कठिन हैं। सहज उनके किये हैं जो प्रेम कि राह में लय (फना) हो चुके हैं और अपना सब कुछ खो बैठे हैं। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं हैं। उनके

लिए गुरु को छोडकर दूसरी जगह जाने का सवाल ही पैंदा नहीं होता, उनके सब सहारे पहले ही खत्म हो चुकते हैं। जो मरने से पहले ही मर चुकते हैं उन्ही को परमात्मा का प्रेम मिलता हैं। यही सच्ची जिन्दगी हैं।

सच्चे गुरु का और परमात्मा का प्रेम दो नहीं हैं। एक ही हैं। गुरु का प्रेम आगे चलकर परमात्मा के प्रेम में बदल जाता हैं और गुरु कि शक्ल आगे चलकर परमात्मा में बदल जाती हैं। इसलिए संतमत और सूफीमत पुकार पुकार कर कह रहा हैं कि परमात्मा और गुरु दोनों एक हैं। उनमे थोडा भी अंतर नहीं हैं। लेकिन इसकी समझ किसी बिरले ही को होगी जिस पर उसकी कृपा हैं वरना औरों के लिए तो यह पागलों कि बड़बड़ाहट हैं। वही सौभाग्यशाली हैं जिस पर गुरु और परमात्मा की कृपा हैं।

दुनियाँ से उपराम होना

प्रवचन गुरुदेव, गाज़ियाबाद

(दिनांक १३-७-१९६२)

आत्मा उपर से इन्द्रियों मन बुद्धि और खुदी (अहंकार) के पर्दे हटाने के लिए इस दुनियाँ में भेजी गयी हैं ताकि वह इन पर्दों को अपने उपर से अलहदा करके और और इनसे उपराम होकर बिलकुल नंगी हो जाए और अपनी असल जौहर (मूल तत्व, परमेश्वर) में समा जाए। यही उनके जीवन का लक्ष्य हैं। इसके लिए आत्मा को शरीर से मिला दिया गया हैं और अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) इन दोनों (शरीर व आत्मा) को मिलाये रहता हैं। इन्द्रियों से भोग कर और बुद्धि से समझ कर मनुष्य तमाम दुनियां कि वस्तुओं और मनुष्यों से प्रेम करता रहा हैं और जब उसमे सार नही पाता बल्कि क्षणभंगुर पाता हैं तो दुनियां से अहिस्ता अहिस्ता अलहदा हो कर उपराम हो जाता हैं। अपने असली जौहर (ईश्वर) का ही भरोसा रखता हैं और उसी कि याद में मग्न रहता हैं। यही दुनियां से उपराम हो जाना हैं।

ऐसा वह अपनी शक्ति से नहीं कर सकता क्योंकि उसकी आत्मा में वापसी की शक्ति न्हीन्ही। इसके लिए उसकी अपनी बिखरी हुई शक्तियों को इकट्ठा करना होगा और छुपी हुई आत्मिक शक्तियों को जगाना होगा। यह बिना ऐसे सख्श (व्यक्ति) की सहायता के नहीं हो सकता जिसने मन और आत्मा की शक्तियों को एकत्रित करके आत्मिक शक्तियों को जगा लिया हैं और परमात्मा में लीन हो गया हैं। इसी का नाम गुरु हैं।

गुरु की मदद से वह इन पर्दों को अपनी आत्मा के उपर से हटा कर अपना असली रूप अनुभव करता है और फिर अपने असली जौहर (परमेश्वर) में मिल जाता है। इसलिए गुरु कि बहुत जरुरत है। बगैर सतगुरु के इस रस्ते में कामयाबी नहीं होती – संतों का ऐसा कहना है और अनुभव है।

इस तरह आत्मा इस हालत पर पहुँच कर अगर पूर्ण रूप से उसमे लय हो जाय तो उसका शरीर नहीं रहता और न उसके पिछले संस्कार बाकि रह जाते है। दुसरे अगर सत्पुरुष दुनियां में न रहे तो ईश्वर का असली मकसद दुनियां पैदा करने का 'एकोहं बहुतस्यामि'(जैसा मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊं) – पूरा न हो। इसलिए ऐसे संतों महापुरुषों को विशेष रूप से लय होते हुए भी मन के मुकाम पर उतरना पड़ता है जिससे और जीवों का कल्याण हो, और अगर उनके संस्कार बाकि है तो वे भी पुरे हो जाए। इसलिए संत निर्विकल्प समाधि का अनुभव करने के बाद भी अपने सगुन ईश्वर (यानि गुरे के ध्यान) के स्थान पर उतर आते है यानि परमात्मा का अनुभव करने के बाद भी उस स्थान से नीचे उतर कर ईश्वर का दर्शन अपने गुरु रूप में करते है और गुरु को ईश्वर रूप मानते है। गुरु मूर्ति ही उनके लिए परमात्मा का सगुन रूप है। इसी जगह गुरु की अहमियत (महानता) का पता लगता है और असली श्रद्धा आती है। ऐसे लोग कभी ईश्वर के निराकार रूप का अनुभव करते है और दुनियावी काम के लिए जो बगैर मन की सहायता के नहीं हो सकता, ईश्वर के साकार रूप यानि गुरु के प्रेम का आनन्द लेते है।

"बिना अहंकार का त्याग किये, मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती"

प्रवचन गुरुदेव

(जुलाई १९६२)

मनुष्य कि आत्मा पर चार मोटे पर्दे पड़े रहते हैं। उनके शुद्ध किये बगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

१. इन्द्रियों के भोग का ख्याल का पर्दा

२. मन की वासनाओं कि युक्ति का पर्दा।

३. बुद्धि की चतुराई का पर्दा।

४. अहंकार का पर्दा।

पहले तीन पर्दों के कर्ण चौंथा पर्दा पड़ जाता हैं। चौंथा पर्दा बारीक होता हैं। तप से तीन पर्दे तो शुद्ध हो जाते हैं लेकिन चौंथा पर्दा बिना भक्ति के दूर नहीं होता और आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

जो लोग देश सेवा परोपकार और अनेक शुभ कर्म दूसरों के भलाई के लिए करते हैं लेकिन ईश्वर कि भक्ति का सहारा नहीं लेते यानि ईश्वर कि भक्ति नहीं करते उनमे यह बारीक पर्दा छुपा रहता हैं जिससे आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता और जिससे उनकी मुक्ति नही होती। उनके कर्म तो कटते हैं और अगला जन्म इससे अच्छा मिलता हैं लेकिन मोक्ष नहीं मिलती क्योंकि उनके और इश्वर के बीच में खुदी (अहं , Ego) का पर्दा कायम रहता हैं। उदाहरण के रूप में मानो कोई व्यक्ति देश सेवा में दिन रात लगा रहता हैं लेकिन उसमे ईश्वर कि भक्ति नहीं हैं तो जाहिर तौर पर उसने खुसी को दूर कर दिया हैं परन्तु कारण रूप में उसका पर्दा मौजूद हैं। उसको शुभ कर्मों का

फल जरुर मिलेगा अगले ज म में वह बहुत बड़ा आदमी होगा लेकिन उस पर्दे के कारण उसकी मुक्ति नहीं होगी। बिना ईश्वर भक्ति के कारण रूपी में खुदी का पर्दा कायम रहता है और जब तक कि कोई पर्दा ईश्वर और जिव के बीच में शेष रहता है उसकी मोक्ष नहीं हो सकती।

मनुष्य जीवन का आदर्श

प्रवचन गुरुदेव, कासगंज

(दिनांक १४-२-१९६३)

आदमी की जिन्दगी का आदर्श यह है की वह अपनी असल सत्, चित्त, आनन्द से मिलकर खुद सत्, चित्त, आनन्द हो जाए। उसका साधन यही हो सकता है कि लौकिक और परलौकिक जीवन को एक सा बनाये यानि जिसका ध्यान अंदर करता है उसको बाहर देखे। अपने में जगत को देखे और जगत में अपने को देखे हर जगह उसी एक परम तत्व को अनुभव करे। हर एक चीज के साथ चाहे उसका जाहिरी रूप कैसा ही क्यों न हो उसमे उसी परम तत्व को अनुभव करे।। लेकिन बुद्धि ने प्रेम, व् ज्ञान को न सिर्फ खंड खंड कर दिया बल्कि उसके रूप को बिलकुल ही बदल दिया। हम दुनियां में अपने को और दुसरों को अलग अलग अनुभव करते हैं। यह ही नहीं बलिक अपने को दिखाते कुछ और हैं और होते कुछ और हैं। दिल में कुछ और है और जाहिर कुछ और करते हैं। यानि अपना जीवन दुनियांवी गरज (स्वार्थ) के लिए बिलकुल दुहरा बना लिया है और इसी को इखलाक (सदाचार) कहते हैं। यह बड़ी बद-इखलाकी है, (अनाचार है) ऐसे आदमी असल से बहुत दूर जा पड़ते हैं। खुद धोखे में है और दुसरे को धोखे में रखते हैं। इस दुनियां में दुःख पते हैं और आगे भी दुखी रहते हैं। यह जब तक अपनी हालत न बदलेंगे और जाहिरी और बातिनी (अंदर से) एक न बनायेंगे परमार्थ के अधिकारी नहीं बन सकते। जब तक वह अपना दुहरापन छोड़ कर एक न बन जायेंगे दुसरों से कैसे मिल सकते हैं और खंड को अखंड में कैसे तब्दील कर सकते हैं और उस परमतत्व से मिलकर एक कैसे हो सकते हैं ? इसलिए उनका पहला साधन यही

होना चाहिए कि अपनी जाहिरी और बातिनी दोनों को एक बनाएं। जो दिल में है वही जबान (मुंह) पर हो। फिर दूसरों के दुःख में अपना दुःख, और दूसरों के सुख को अपना सुख अनुभव करें। अपने प्रेम को दुसरे को दें। अपने ज्ञान को दूसरों को दें ताकि सबका हित एक जगह हो जाय। एक हो जाने पर ही एक से मिल सकते हैं वरना कदापि नहीं।

तीन प्रकार के रोगी

प्रवचन गुरुदेव, कानपुर
(दिनांक १३-३-६३)

मनुष्य दुनियां में इसी वास्ते भेजा गया है कि मन की चाहों को पूरा करें और उनसे मुक्त हों। यही सच्चा योग है। और यही तकमील (अध्यात्म कि पूर्णता) है या मुकम्मिल इंसान होना है। व्हाहे या तो पिछले जन्मों कि होती है या पिछले जन्म के भोग का नतीजा है। बगैर इनके भीगे या नष्ट किये और इनसे मुक्त हुए योग नहीं हो सकता। लेकिन चाहों का ख़त्म होना बहुत मुश्किल है। जब तक आत्म जागृति नहीं होती हमे नहीं मालूम होता कि हमारे अंदर क्या क्या चाहें मौजूद है। आत्म जाग्रति सत्संग व अभ्यास से होती है जिससे विवेक पैदा हो जाता है और सच्चा विवेक यही है कि अपनी कमजोरियों का पता लग जाए।

संसार क्या है ?

जब हम बाहरी किसी चीज से आकर्षित होते है तो जान लो कि अंदर उसका पहला संस्कार मौजूद है। इस वजह से उससे दोस्ती व दुश्मनी हो जाती है, या स्वाभाविक व्यवहार में जिन चीजों से हमको सुख व आराम मिलता है, उससे मोहब्बत हो जाती है और जिनसे दुःख मिलता है उनसे दुश्मनी। और यही बार बार होने से स्वभाव में आ जाते है। इन्ही को संस्कार कहते है और यही मनुष्य का संसार है। जब जागृति होने पर विवेक पैदा होता है तो दिल की इन बीमारियों का पता चलता है। जब तक दिल कि ये बीमारियाँ दूर नहीं होती हमको दुनियां से उपरामता नही हो सकती। अगर किसी चीज को देख कर नफरत घृणा हो उससे यह नतीजा निकालना चाहिए कि इससे हमारे दिल को नफरत है और दिल में ख्वाहिशात मौजूद है और दिल बीमार है। शारीरिक बिमारी के लिए जिस्म के डाक्टर के पास जाना चाहिए और दिल की बीमारी के लिए दिल के डाक्टर

अर्थात अध्यात्म गुरु के पास जाना चाहिए। बगैर डाक्टर के पास गये और जो नुस्खा उसने तजबीज किया हो उसे बगैर किये और बगैर परहेज़ किये बीमारी नहीं जा सकती।

अव्वल (प्रथम) तो असली डाक्टर का मिलन बहुत मुश्किल है और अगर खुशकिस्मती से डाक्टर मिल भी जाता है तो वह अभ्यास रूपी दवा बताता है। उसको नहीं करते। और अगर दवा इस्तेमाल करते हैं तो परहेज़ बतलाया जाता है वह नहीं करते हैं। तो फिर फायदा कैसे हो सकता है ? इस्त्ये वर्षों अभ्यास करने पर भी जो फायदा होना चाहिए वह नहीं होता।

मरीज (अभ्यासी) दो तरह के होते हैं। एक वह जो डाक्टर तजबीज (निश्चित) कर देता है उसको सही जानकर बकायदा (नियमानुसार) दवा का इस्तेमाल करते और परहेज़ करते हैं। उनको गुरु भक्त कहते हैं। इनको आराम जल्दी हो जाता है। किसी न किसी रोज़ पूरी सेहत (स्वास्थ्य लाभ) हो जाती है।

दूसरी किस्म (प्रकार) के वो लोग होते हैं जो यकीन (विश्वास) तो करते हैं परन्तु पूरी तौर से नहीं। कुछ बातों को तो सही मानते हैं और कुछ को नहीं। कबी दवा पीते हैं कभी नहीं, और परहेज़ भी मनमाना करते हैं, इसलिए फायदा भी वैसा ही होता है। तीसरे वह हैं कि डाक्टर तो मिल गया लेकिन उनके कहने के मुताबिक न तो अभ्यास करते हैं न परहेज़। इनका परमार्थ नहीं बनता। कर्मों का फल अवश्य मिलता है।

हर सत्संगी भाई को दिल में सोचना चाहिए कि वह इन तीन मरीजों में से कौन सा है ? और सोचकर अपनी कमियों को पूरा करना चाहिए। वरना कभी फायदा नहीं होगा।

गुरु महाराज सबका कल्याण करें।

भेंट

प्रवचन गुरुदेव, सिकंदराबाद (यू० पी०)

(प्रातः २९-१०-६३)

भेंट तीन प्रकार की होती हैं - रुपए -पैसे यानी धन दौलत की, मन की और आत्मा की।

धन की भेंट -- रुपए -पैसे की भेंट सबसे नीची समझी जाती है। गुरु को रुपया पैसा और धन दौलत इसलिए भेंट नहीं की जाती कि वह इनका भूखा है। आपके धन की उसको ज़रूरत नहीं है। भेंट वह इसलिए लेता है कि उससे आपका उपकार हो और आपका पैसा जहाँ लगे उससे औरों का भला हो। दुनियाँ के और पदार्थ जहाँ बन्धन हैं वहाँ रुपया पैसा भी एक बन्धन है और बन्धन टूटने ही चाहिये। यह दुनियाँ में फ़साने वाला है। इसे किसी शुभ कार्य में लगाना, ईश्वर की भेंट है। इस भावना से इसे गुरु अर्पण किया जाता है। इसके साथ -साथ बन्धन ढ़ीला होता है। भेंट देने वाला तो देकर हलका हो जाता है, मगर लेने वाले पर इसका बोझ पड़ता है। वह या तो इसका मुआवज़ा दे (दुआ से या और किसी तरह) या अपने शुभ कर्मों में से हिस्सा बाँटे। अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो उसकी गिरावट होगी।

भेंट देने से गुरु चरणों में श्रद्धा बढ़ती है, मन शुद्ध होता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है। मन का शुद्ध होना ज़रूरी है। क्योंकि जब तक मन साफ़ न होगा आत्मा के ऊपर से आवरण दूर नहीं होंगें और ईश्वर का प्रेम नहीं मिलेगा। मन का शुद्ध होना यही है कि आत्मा का प्रेम जागे। ईश्वर का प्रेम आत्मा में क़ुदरती है, लेकिन मन की वासनायें, इन्द्रिय भोग की ख़्वाहिश, बुद्धि की चतुराई, अपनी ख़ुदी - यही मन के चारों परदे उसको ढँके रहते हैं। बजाय ईश्वर प्रेम के दुनियावी चीज़ों से प्रेम हो जाता है। जब अभ्यास, वैराग और सत्संग से यह ख़्वाहिशात शान्त हो जातीं हैं, तो यहीं मन के

परदों का हटना है। इनके हटने पर जो ईश्वरीय प्रेम क़ुदरती छिपा हुआ था आहिस्ता -आहिस्ता उभरने लगता है।

रुपये के मुक़ाबले में मन की भेंट ज़्यादा अच्छी है। गुरु जो कहे, उस पर यक़ीन करना, अपने ख़्याल को उसके साथ शामिल कर देना और उसके कहे हुए को उसी शक़्ल में क़बूल कर लेना मन की भेंट है। इसके दो रूप हैं - एक मजबूरी में क़बूल करना और दूसरे ख़ुशी से क़बूल करना। ख़ुशी यह है कि फलाँ काम गुरु का है, उसको लगन से, चाव से करना चाहिये। इसका नतीज़ा यह होता है कि मन का रूप बदल जाता है। उसके ख़्याल को ख़ुशी से क़बूल करना - यहीं मन को तोड़ देना है। जिसने मन को तोड़ दिया वही क़ामयाब है।

आपमें ख़्वाहिशात जन्म -जन्मांतर से दुनियाँ की थीं। उन्हें पूरा करने के लिए मालिक ने आपको दुनियाँ में भेजा। आपकी आत्मा ने मनुष्य शरीर धारण किया, उसके ऊपर ख़्वाहिशात का परदा था। ईश्वर की शक्ति से ही काल ने इस दुनियाँ को रचा। ईश्वर ने जीव को भेजा ताकि होश में आ जावे। यह दुनियाँ को भोग कर उसका रस लेकर ख़्वाहिशात को भोग कर, उपराम हो जाये और अपने धाम वापस चले जायें जो उसका असली ध्येय है। किसी न किसी तरकीब से उनमें जागृति आ जावे। लेकिन जीव यहाँ आकर रस लेते -लेते फँस गये, ख़्वाहिशात दुनियाँ के रस और आनन्द की ओर बढ़ने लगीं, आत्मा पर ग़िलाफ़ बजाय कम होने के और चढ़ते गये और जीव जो पहले से बन्धन में जकड़े हुए थे और ज़्यादा बन्धन में जकड़े जाने लगे। दुनियाँ की यह हालत देख कर जीवों के उद्धार के लिए संत प्रकट हुए। उन्होंने दुनियाँ को उजाड़ा नहीं, क़ायम रखा, क्योंकि दुनियाँ उजाड़ कर तो असल मक़सद पूरा नहीं हो सकता। संत जीव को दुनियाँ की ख़्वाहिशात से उपराम करा कर और दुनियाँ से वैराग्य और ईश्वर से अनुराग कराकर अपने धाम को वापस ले जाते हैं। अवतारों और संतों में भेद है। अवतार जितने भी आये, सब काल देश से

आए। काल कभी भी यह नहीं चाहता कि दुनियाँ उजड़ जाय। लिहाज़ा जब -जब दुनियाँ में बुराई और अधर्म बढ़ा अवतारों ने आकर balance (संतुलन) क़ायम किया। बुराइयों को रोका और भलाई को बढ़ावा दिया ताकि दुनियाँ क़ायम रहे। इस तरह रचना को क़ायम रखने के लिए अवतार आते हैं। संत तलवार से काम नहीं लेते, प्रेम से काम लेते हैं, अधर्मी लोगों का नाश नहीं करते बल्कि अधर्म का नाश करके परमार्थ पथ पर चलना सिखाते हैं।

ईश्वर के तीन रूप मानते हैं - ब्रह्मा पैदा करने वाले, विष्णु पालन -पोषण करने वाले और शिव सँहार करने वाले। ये तीनों देवता श्रष्टि को क़ायम रखते हैं और जब -जब ख़राबी होती है तो विष्णु का अवतार आकर उस ख़राबी को दूर करके ठीक करता है। लेकिन ईश्वर का चौथा रूप भी मानते हैं जो संत या गुरु हैं जो दुनियाँ से छुड़ाने के लिये आते हैं। जब जीव इस आवागमन से तंग आ जाता है और इससे छुटकारा पाने की ख़्वाहिशमन्द होता है तो ईश्वर का चौथा रूप (संत रूप) इन्सानी शक़्ल इख़्तयार करता है और जो लोग (अधिकारी) जीवनमुक्त होना चाहते हैं उनको अपनी सोहबत से फ़ैज़याब कराकर अपने धाम यानी दयाल देश को वापस ले जाते हैं, जहाँ जाकर फिर वापिस नहीं आता। इस तरह जीव हमेशा के लिये आवागमन से छूट जाता है। बाकी और जीवों पर जो उसकी सोहबत में आते हैं उन पर भी उसका असर पड़ता है और वे भी आगे चलकर अधिकारी जीवों की श्रेणी में आ जाते हैं।

यह दुनियाँ काल की रचना है. यहाँ पर जो क़र्ज़ लिया है वह चुकाना होगा यानी जो कर्म किए हैं, अच्छे या बुरे, उनका एवज़ मिलेगा। मन दुनियाँ में लगा है, आत्मा अपने देश को जाना चाहती है। मन का रुख़ नीचे की तरफ़ है और आत्मा का ऊपर की तरफ़, दोंनों में जद्दोजहद होतीं है। जब मौत आती है, जान हाथ पैरों से खिंच करके ऊपर को सिमटती है। इन्द्रिय और गुदा से जब निकल जाती है तो पेशाब पाख़ाना छूट जाता है। हृदय से निकलने पर दिल की धड़कन बंद हो

जाती है, नब्ज़ छूट जाती है। गला घड़घड़ाने लगता है, वहाँ से निकलने पर आँखों की ज्योति जाती रहती है। इसके बाद भौंहों के बीच के हिस्से से ऊपर चढ़ती है वहाँ एक पतली सी नली है जिसे बंकनाल कहते हैं। जब इसमें होकर गुज़रती है तो बड़ी तक़लीफ़ होती है। आत्मा ऊपर को खींचती हैं और मन की जो गाँठ उसके साथ बंधी होती है वह उसमें से नहीं निकल पाती, टुकड़े -टुकड़े हो जाती है। आदमी हाथ पाँव छटपटाता है, कुछ बोल नहीं पाता। इस मुक़ाम पर बहुत अंधकार होता है। अब जो दुनियाँ में फँसे हैं उनको लेने के लिए यमदूत आते हैं और दूसरों को संत। संत जब आते हैं, बात - चीत करते करते जाते हैं, उन्हें तक़लीफ़ नहीं होती। लगता है जैसे सो रहे हों। जिस रास्ते मौत होती है उस रास्ते संत रोज़ गुज़रते हैं, रोज़ मरते- जीते हैं। अभ्यासियों ने अनुभव किया होगा कि जब सुरत ऊपर को चढ़ती है तो जिस्म का नीचे का हिस्सा सुन्न हो जाता है। मतलब यह है कि आत्मा वहाँ से खिंच कर ऊपर चढ़ जाती है। दुनियाँ बनती है मन की शक्ति से, परमार्थ मिलता है काल का कर्ज़ा देने से।

हम यहाँ पर अपनी ख़्वाहिशात की पूर्ति के लिए और उससे उपराम होकर अपने धाम को वापस जाने के लिए आए हैं, यानी हमारे दो आदर्श हैं। पहला यह है कि अपनी ख़्वाहिशात को ज्ञान से ख़त्म करो या भोग कर ख़त्म करो। यहीं काल का क़र्ज़ अदा करना है। उनसे वैराग होने पर ईश्वर प्रेम पैदा होगा और उससे अनुराग पैदा होगा। यही ईश्वर प्राप्ति है। दुनियाँ को हांसिल करो और फिर उसको छोड़ो और ईश्वर प्रेम हासिल करो और उसमें अपने आप को लय कर दो। दुनियाँ को हासिल करना बहुत मुश्किल काम है, और यही दीन और दुनियाँ का बनना है। जो दुनियाँ को हाँसिल नहीं कर सकता, वह दीन को क्या हाँसिल कर सकता है यानी जिस चीज़ को हाँसिल नही किया है, वह छोड़ेगा क्या ? दुनियाँ के जंजाल, मन के विकार सब शैतान का पसारा है। जब तक शैतान से नहीं लड़ोगे कामयाब नहीं होंगे। कामयाब होने पर सच्चा सुःख, हमेशा क़ायम रहने वाला

सुःख, ऐसा सुःख जिसके बाद किसी और सुःख की तुम्हें इच्छा नहीं होगी, हाँसिल हो जायेगा। यहीं लक्ष्य हैं, लेकिन यह एक जन्म का काम नहीं हैं। कुब्बते- इरादी (इच्छा शक्ति) मज़बूत करो। दुनियाँ की चीज़ों को देखो, भोगो और छोड़ो, उनसे उपराम हो जाओ। पहले वैराग फिर अनुराग। जब परमात्मा से सच्चा अनुराग होता हैं और उसका सच्चा प्रेम हासिल हो जाता हैं, यही मोक्ष हैं। सच्चा प्रेमी मोक्ष नहीं चाहता। इसका साधन यह हैं कि तुम परमात्मा के अंश हो और उसका प्रेम तुम्हारे अन्दर हैं लेकिन तुमने उसे बाहरी चीज़ों में फैला रखा हैं, उसे बटोरो। मन की ख़्वाहिशात को ख़तम करो, उसे सब तरफ़ से हटा कर एक ख़्वाहिश पर लाओ - कौन सी ख़्वाहिश - परमार्थ की ख़्वाहिश।

इस काम में हर दम परमात्मा की मदद चाहो। उसकी कृपा से तक़लीफ़ें आती हैं। तक़लीफ़ों की शक्ल में जो उसकी कृपा होती हैं वह बंधन छुड़ाने के लिए होती हैं। इसलिए फ़क़ीर को तक़लीफ़ें ज़्यादा होतीं हैं। वह तक़लीफ़ चाहता हैं कि संस्कार ज़ल्दी कटें। असली चीज़ परमात्मा का प्रेम हैं। सब कोशिशें उसी को हासिल करने के लिए होती हैं। वह तब मिलेगा जब सब संस्कार कट जाएँगे। यह मन की भेंट हैं। इसे जब तक गुरु को नहीं दे दोगे, मन आसानी से साफ़ नहीं होगा। इसी को समर्पण या surrender कहते हैं। रूपये पैसे की भेंट बहुत से लोग कर लेते हैं, मन की भेंट उनसे कुछ कम लोग कर पाते हैं, लेकिन आत्मा की भेंट कोई बिरला ही कर पाता हैं। जिसने सब कुछ समर्पण कर दिया उसने सब कुछ पा लिया। " मैं तू हुआ तू मैं हुआ। मैं तन हुआ, तू जान हुआ। ऐसी एकता हो गई कि इसके बाद कोई नहीं कह सकता कि " मैं और हूँ, तू और हैं "। यह आत्मा की भेंट हैं। यह ज़बानी नहीं होतीं। जिस रोज़ यह दे दी, उसी रोज़ मुराद पूरी हो गई। मोक्ष हो गयी। यह बात भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता के आख़ीर में बताई हैं जो सारी गीता का निचोड़ हैं, उपसंहार हैं - "हे अर्जुन। अब अन्त की बात और सुन जो सब से गुह्य हैं। तू मुझे

अत्यन्त प्यारा है, इसीलिए मैं तेरे हित की बात कहता हूँ। मुझमें अपना मन रख, मेरा भक्त हो, मेरी पूजा कर और मेरी वन्दना कर। मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तू मुझमें आ मिलेगा क्योंकि तू मेरा प्यारा भक्त है। सब धर्मों को छोड़कर तू केवल मेरी ही शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। डर मत। "

किसी चीज़ की नापसन्दगी या नफ़रत के ख़्याल से उसे छोड़ देना भेंट नहीं है। भेंट सबसे प्यारी चीज़ की दी जाती है जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फसाने वाली हो। कहने का मतलब यह है कि जो चीज़ तुम्हें सबसे प्यारी हो, उसे ईश्वर की राह में क़ुर्बान कर दो। संध्या में बैठो तो देखो कि किस चीज़ का ख़्याल आता है। जिस चीज़ का ख़्याल आए समझो कि वही रुकावट है। संध्या के वक्त जो ख़्याल आते हैं, आत्मा का प्रकाश पाकर वह स्थूल रूप धारण कर लेते हैं। संध्या में ज़िस्म का ग़िलाफ़ उतर जाता है, मन काम करता रहता है। अगर मन का परदा टूट जाय तो ख़्याल में इतनी शक्ति आ जाती है कि आदमी भी ब्रह्मांड की रचना कर सकता है। आत्मा और परमात्मा के बीच की चीज़ मन है, वह हट जाये तो आत्मा वही असल है जो परमात्मा है। जो ख़्वाबात (स्वप्न) आयें उन पर ध्यान रखो। ख़्वाब मन का रूप दिखाता है। जो चीजें तुम्हें फसाये हुई हैं, उन्हें ख़्याली तौर पर क़ुर्बान करो। ख़्याली तौर पर उन्हें परमात्मा के चरणों में रख दो - हे मालिक। यह तेरी है, हमारा मोह का परदा दूर कर, हमें सच्ची रोशनी दिखा।" जब- जब हम फंसे, हमने गुरुदेव से प्रार्थना की और उन्होंने हमेशा सहायता करने के साथ - साथ हमारी हिम्मत बढ़ायी। उन्होंने हमेशा आगे बढ़ने की ताक़ीद की। मेरा तो यह तज़र्बा है कि जो आदत मैंने उनसे छिपाई वह रुक गई और जो उनके आगे रख दी वह आदत जाती रही। यह समर्पण है। गुरुदेव सबका कल्याण करें।

संतमत में उपासना का तरीका क्या है ?

प्रवचन गुरुदेव, सिकंदराबाद (यू० पी०)

(ता० २६-१०-६३)

संत मत में सबसे पहली बात ईश्वर पर विश्वास है। वह सत् चित्त आनन्द का भंडार है। वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा। अगर ईश्वर में विश्वास नही है तो कोई भी आदमी संतमत में दाखिल होने लायक नही है।

यह ख्वाहिश कि हम अपने को या ईश्वर को जान ले या हम हमेशा हमेशा की शांति पा जाये , सिर्फ उन्ही आदमियों में होती है जिनमे कुछ consciousness (जाग्रति) पैदा हो गयी है। जानवरों में यह ख्वाहिश नहीं होती। उनके अंदर सोच विचार की शक्ति नहीं होती। उनकी जिन्दगी एक प्रकार से सीमित होती है। खाना सोना और मैथुन कर लेना या अपनी मौजूदा जिन्दगी की जरूरतों को पूरा करना , यही तक उनकी बुद्धि की सीमा (limit) होती है। जानवरों को बुद्धि का विकास नही होता इसलिए उनसे consciousness (जाग्रति) नहीं होती। आदमी की बुद्धि का विकास होता रहता है , उसमे सोच विचार की शक्ति होती है, उसकी लगातार यह ख्वाहिश रहती है की मुझे सुख मिले, दुःख से किस तरह बचा जाए, वह हर चीज का ज्ञान चाहता है, उसे परस्पर प्रेम स्नेह की चाहना होती है। लेकिन आदमी आदमी में फर्क है। कुछ लोग ऐसे होते है जिनकी बुद्धि बहुत कम विकसित होती है। वे बहुत कुछ जानवरों के से ही खवास (प्रकृति स्वभाव)रखते है। खाना पीना सोना मैथुन कर लेना और केवल थोड़े बहुत सांसारिक और इन्द्रियों के सुख के लिए कोशिश कर लेना ही उनकी बुद्धि के विकास कि हद होती है । लेकिन जो लोग इससे भी आगे

सोचते हैं, जिन्हें इन्द्रिय सुख या संसारी चीजों का सुख पायेदार (स्थायी) नही मालूम होता , जिन्हें हमेशा रहने वाले सुख और शांति की तलाश की ख्वाहिश होती हैं वे ही असली मुतलाशी (खोजी) और संतमत में शामिल होने के अधिकारी होते हैं।

यह सुख और आनन्द हासिल करने की इच्छा मनुष्य में इसलिए होती हैं कि वह ईश्वर का अंश हैं। जिस तरह समुद्र और उसकी बूंद , आग और उसकी चिंगारी , ईश्वर अंशी हैं और मनुष्य उसका अंश हैं। जो खवास (qualities) अंशी में हैं वही उसके अंश में हैं सिर्फ मिकदार (मात्रा quantity) का फर्क हैं। मुन्श्य की आत्मा ईश्वर का अंश हैं वह हमेशा अपने असल प्रीतम यानि ईश्वर से मिलने के लिए तडपती हैं। लेकिन वह जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों के गिलाफों से ढंकी हुई हैं , उसको परवरिश (पोषण) नहीं मिलती इसलिए यह कमजोर हो गयी हैं। तीन शरीर होते हैं physical (स्थूल) मेंटल (सूक्ष्म) और spiritual (कारण) । जब तक इन तीनों का गिजा (भोजन) नही मिलेगि तब तक आत्मा की परवरिश (पोषण)नहीं होगी। जब तक इन तीनों कि परवरिश नहीं होगी आदमी सुखी नहीं रहेगा।

ईश्वर प्रेम का भण्डार हैं। वह प्राणी मात्र से अपनी औलाद (सन्तान) की तरह प्रेम करता हैं । अगर आप उसकी तरफ एक कदम बढ़ाएंगे , वह आपकी तरफ सौ कदम बढेगा , मगर उससे मिलने की सच्ची चाह आपके अंदर होगी तब। चाह सबमे हैं चाहे आप कोई भी पेशा करते हो सब इसी के लिए हैं कि सुख प्राप्त हो। लेकिन जो लोग सच्चे रस्ते को पकड़ लेते हैं उन्हें रुकावट नहीं होती, उन्हें दुनियां को छोड़ने में दुःख नहीं होता। जब इसे छोड़ कर जाते हैं ख़ुशी से जाते हैं और दुनियां में आने का उनका मकसद (ध्येय) पूरा हो जाता हैं।

लोगो में चाह तो हैं लेकिन तरीका और रास्ता नहीं मालूम। इसी के लिए संत आते हैं , ईश्वर की तरफ से भेजे हुए, उसका प्यारा रास्ता दिखाने और तरीका बताने। उसका काम खुद कुछ

हासिल (प्राप्त) करना नहीं होता। उन्हें सब कुछ प्राप्त होता है , वे ईश्वर के निज पुत्र होते हैं। उन्हें दुनियां में आ कर दुहरा काम करना पड़ता है। जैसे कोई प्रोफेसर हो और उसे a b c कच्ची पक्की कक्षाओं को पढ़ाना पड़े तो पहले उसे उस stage (स्तर) पर आना पड़ेगा जिस पर वे बच्चे हैं जिन्हें पढ़ना सीखना है। इसी तरह संतों को पहले उस stage (स्तर) पर आना पड़ता है जिस पर जीव हैं। इस काम में वे माया कि मदद लेते हैं यानि अपने जीवन को वे दुनियादारों का सा बना लेते हैं। इसमें उनकी अपनी गरज (स्वार्थ) नहीं होता। उन्हें इंद्री भोग की इच्छा नहीं होती, वह सिर्फ जीवों के उद्धार की इच्छा ले कर आते हैं।

ऐसे संतों से फायदा सबको ही होता है लेकिन खास फायदा उन्ही जीवों को होता है जो दरअसल (वास्तव में) अधिकारी होते हैं। अधिकारी कौन है ? जो हज़ारों जन्मों से माया जाल में फंसे चले आ रहे हैं, टक्करें खाते हैं , परेशान हैं और उससे निकलना चाहते हैं। उनकी हालत उस हिरन की तरह होती है जो रेगिस्तान में पानी के लिए मारा मारा फिरता है और मृग ब्रह्मांड, देवी देवता , ईश्वर तुम्हारे अंदर है। अंदर की सफाई करो, अंदर तलाश करो।

: ३ :

तरीका क्या है ? ऐसे सख्श (व्यक्ति) की तलाश करो जिसने अनुभव करके उसे जान लिया है। जब ऐसे सख्श को ढूंढ लोगे तो वह अनुभव करा देगा। वायदा आगे का नही करेगा। इस हाथ दो उस हाथ लो, मगर कीमत देनी पड़ेगी। मालिक को भला कौन कीमत दे सकता है। उसे कीमत के बजाय नजराना (भेंट) दो। नजराना क्या है ? दोनों जहां उसका नजराना है। दुनियां का और बहिश्त (स्वर्ग) का तीनों लोको के आनन्द का नजराना दे दो और वह तुम्हें अभी मिल जाएगा। जितनी देर इस नजराने को देने में लगेगी उतनी ही देर में मिलेगा। संत मत बताता है ' उसे

अपने अंदर खोजो ' वह तुम्हारे अंदर है छिपा हुआ है , उसे खोजो। नजराना उसे ऐडा कर दो , वह तुम्हें जरुर मिल जाएगा।

पन्थ वह है जिस पर पन्थाई चले। अगर चलना रुक गया तो फिर पन्थ कहाँ है ? बगैर चले मंजिल तक कैसे पहुंचेगा ? चलना क्या है ? उससे प्रेम करो , उसे अपने अंदर खोजो और चीजों से अगर प्रेम है तो उसे तुम धोखा नहीं दे सकते। बच्चा बचपन में अपनी माँ के आश्रित रहता है , वह अपनी बुद्धि नहीं लड़ाता इसलिए बेफिक्र रहता है। वही जब बड़ा होता है तो माँ बाप की परवाह जाती रहती है, अपनी बुद्धि से काम लेने लगता है और दुनियां के झंझटों में फंसता है। इसी तरह तुम ईश्वर क्व बच्चे हो वह तुम्हारा सच्चा माँ बाप है। अगर तुम अपनी बुद्धि लगाते हो तो उसे क्या। उस पर depend (आश्रित) रहो।

संत मत में गुरु को ईश्वर रूप मानते हैं। मुसलमानों में जो इज्ज़त हजरत मोहम्मद साहब की है वही इज्ज़त अपने हल्के में गुरु की है। जिस्म से फर्क जरुर है लेकिन इखलाक (सदाचार) और रूहानियत (अध्यात्म) से दोनों एक ही है। इसी तरह कृष्ण भगवान के विषय में है। जो अवतार शुरू में आये और अगर उनका सिल्सिला अभी तक कायम है तो वह जंजीर कि तरह उपर तक जुड़ा हुआ है। अगर एक कड़ी हिलाओ तो उपर तक साड़ी जंजीर हिल जाती है। एक आदमी ऊंट कि नकेल पकड़ कर आगे आगे चलता है। पहले ऊंट कि दुम में दुसरे ऊंट कि नकेल बंधी हुई होती है फिर तीसरे की , चौथे की। इस तरह सैंकड़ो ऊंट एक ही नकेल से जुड़े चले जाते है। संतमत में आदि गुरु और मौजूदा गुरु कि भी वही हालत होती है जो आदि गुरु की। अंतर केवल शारीर का होता है। इसको निस्बत कायम हो जाना कहते है यानि आदि गुरु की आत्मा मौजूदा गुरु में आ जाती है। संत मत में जाहिरी अच्छाई बुराई को नहीं देखते। यहाँ कि शिक्षा यह है कि गुरु को आधार मान कर रास्ते चलते है। किसी को आधार मानना जरुरी होता है। अरिथमेटिक (अंक

गणित) या एलजेबरा (बीजगणित) के सवाल हल करने के लिए X (एक्स) मानना पड़ता है। जब जवाब निकल आता है तब उससे मिलान कर लेते हैं।

दो तरह के लोग होते हैं। एक तो वे जो भोली बुद्धि के हैं जैसे स्त्रियाँ बच्चें और बेपढ़े या k पढ़े लिखे लोग। इन्हें जल्दी विश्वास आता है लेकिन उतनी जल्दी जाता भी रहता है। इसकी बुद्धि परिपक्व नहीं होती इसलिए उसमे स्थिरता कम होती है। दूसरी तरह के वे हैं जो पढ़े लिखे हैं , बुद्धिमान हैं, जो किसी चीज को बिना सोचे समझे मानने को तैयार नहीं होते। ऐसे लोगों को विश्वास देर से आता है पर जब आ जाये तो कायम रहता है। विश्वास के साथ साथ मन की सफाई जरुरी है। आदमी बुद्धिमान और विश्वासी भी है पर अगर मन साफ़ नहीं है तो वह impression (छाप) गलत लेगा और बुरी जगह फेंक देगा। Educated class (पढ़े लिखे लोग) बुद्धि वाले हैं। , बुद्धि से ईश्वर को समझना चाहते हैं , मगर जो चीज बुद्धि को भी प्रकाश या जीवन देती है वह बुद्धि से समझने की नहीं है वे उसे कसे समझ सकते हैं। ईश्वर को अनुभव से जाना जाता है। बहुत से लोग चाहते हैं कि आते ही एकदम अनुभव हो जाए। लेकिन इसका अहल (पात्र) बिरला ही कोई होता है , जैसे स्वामी विवेकानंद।

मन और बुद्धि दोनों को साथ लेकर चलो। दोनों को साफ़ करो तब रास्ता चल सकोगे। जो साधन या बात बताई जाए उसे समझो, तजुर्बा करो और न समझ में आये तो पूछो। जब तक अभ्यास शुरू नहीं करते हो तब तक हर बात को समझने की कोशिश करो , मगर गलत मत समझो। जहाँ समझ में न आये वहीं रुक जाओ उसे अपनी अक्ल का कसूर समझो और इंतज़ार करो , मगर रहबर (गुरु) को धोखेबाज़ न समझो। उसकी तुमसे क्या गरज है ? मन की शुद्धि से क्या गरज (अभिप्राय) है ? मन का साधन है कि न किसी से प्रेम हो न किसी से बैर। संतुलित (balanced) हालत हो। जो चीज या बात जैसी है वैसी ही नजर आवे। अगर मन पर कोई

गिलाफ होता है तो उसके असर से चीज जैसी होती है वैसी नजर नहीं आती , वह उस गिलाफ का अक्स लिए होती है। शीशे के अंदर से रौशनी छनकर आती वह शीशे का रंग लिए होती है। सब तरफ से तबज्जो attention (ध्यान) हटकर ईश्वर कि तरफ लग जाय। बुद्धि शुद्ध हो जाय , अपनी life (जीवन) का goal (लक्ष्य) समझ में आ जाय। गुरु केवल बुद्धि को शुद्ध करता है जिससे वह ईश्वर के ध्यान में लगे। वह मन को lead करे (रास्ता दिखाए) न कि मन के कहने पर चले। मेरा तेरा दूर करो , उसके बाद अंदर जो फैसला होगा वही ठीक होगा। सूफी लोग कल्ब कि सफाई (मन की शुद्धता) करते हैं इसलिए निष्पक्ष मन से बात को समझो, अभ्यास करो और ईश्वर को अपने अंदर ढूंढो।

: ४ :

हमारे यहाँ सब धर्मों के अवतारों कि इज्जत करते हैं किसी से द्वेष नहीं करते। उन सबको बड़ी हस्ती मानते हैं। पर अब इस मौजूदा वक्त में आपका उनसे क्या वसता ? वे तो अपना काम पूरा करके जा चुके इसलिए उनसे कोई फायदा न होगा। इसको इस तरह समझ लो कि कोई मरीज, रहता तो गाँव में है, और रटता है हकीम लुकमान या देहली के हकीम अजमल खां को जो अब मौजूद नहीं है। उसे तो गाँव के नजदीक के ही हकीम से मदद लेनी चाहिए। जो उसके पास जिस्म शारीर से मौजूद हो उसी से उसको फायदा होगा।

: ५ :

संत मत दुनियां नही बनाता। जिसकी दुनियां बनी उसका परमार्थ बिगड़ा और जिनकी दुनियां उजड़ी उसका परमार्थ सुधरा। अगर दरअसल परमात्मा से प्रेम है तो वह जैसे चाहे वैसे रखे, उसमे खुश रहना चाहिए। अपनी औलाद के लिए या दुनियां के लिए ईश्वर से प्रेम करना प्यार नहीं

मक्कारी है। आशिक देता है लेता नहीं। हम तो तुझको प्यार करते है, सब कुछ दिए देते हैं। चाहते क्या है ? कुछ नहीं तू खुश रह।

तुझे सामने बैठा के , यादे खुदा करूँ ।

तू मुझे देखे न देखे, मैं तुझे देखा करूँ ॥

जो ईश्वर से सच्चा प्रेम करते है वे मोक्ष भी नहीं चाहते क्योंकि उसमे भी गरज है। तुझसे प्यार भी नहीं मांगते। बस तेरी याद रहे और उसी में जल कर ख़ाक हो जाए। जहाँ रखे चाहे जिस हाल में रखे , मगर तू खुश रह। दोनों जहां (लोक परलोक) उसका नजराना है। गर्दन काट के रख दो तब उसे पाओगे। यह प्रेम का रास्ता है। इसमें सब कुछ कुर्बान (न्योछावर) करना है :-

'प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय'

गर्दन काट कर रखने का क्या मतलब है ? अपनी कोई ख्वाहिश बाकि न रहे। जो ख्वाहिश हो वह प्रीतम के लिए हो। ईश्वर जैसा चाहे वैसा रखे। अपनी self (आपा) हस्ती मिट जाए। मरने से या गर्दन काट कर रख देने से यह गरज नहीं है कि शरीर टूट जाए। नहीं, उस एक मालिकेकुल (सर्वाधार) के सिवाय और कोई ख्याल न रहे। जितना प्रेम एक माँ बेटे से करती है , पत्नी पति से , व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्र से , जब यह तीनों प्रेम एक हो जाय वैसी मोहब्बत परमात्मा से हो। मोहब्बत इस वक्त कितनी बंटी हुई है , उसे बटोरो , इकठ्ठा करो और मालिक की तरफ लगा दो। यह मुश्किल है और बहुत मुश्किल है। एक रोज में नहीं हो सकता। नगर धीरे धीरे अभ्यास से और गुरु कृपा से सहज हो जाता है। ईश्वर सबका कल्याण करे।